अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका
मार्च 2023

साधना, योग तथा रूपान्तर

अग्निशिखा मार्च २०२३ वर्ष ५३, अंक ८, पूर्णांक ६३१

विषय-सूची
साधना, योग तथा रूपान्तर

सन्देश/सम्पादकीय		३
साधना		५
योग		९
योग की केन्द्रीय प्रक्रिया		१६
ध्यान		२४
रूपान्तर		२८
'पुरोधा' : दैनन्दिनी		३५
एक शिष्या के साथ श्रीमाँ का पत्र-व्यवहार	'श्रीमातृवाणी' से	३८
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : नींद और स्वप्न (२)	नवजातजी	४१
नन्हा महर्षि	वन्दना	४४
सिद्धि	नरेन्द्र विद्यावाचस्पति	४८
फ़ॉर्म ४		४९

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,

पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

सन्देश

... तुम्हें अपना काम इस सरल विश्वास के साथ करना चाहिये कि माताजी उसे सराहती और स्वीकार करती हैं, और यह ऐसा ही है—क्योंकि तुम्हारा काम बहुत अच्छा और उनके लिए उपयोगी रहा है, चैत्य गतिविधि को सरल-सहज रूप में, बाहरी मन के किसी हस्तक्षेप के बिना कार्य में प्रकट होने दो। बहुत सम्भव है कि इससे तनाव ठीक हो जायेगा और तब तुम्हारी साधना शान्त-स्थिर प्रसन्नता के साथ आगे बढ़ सकेगी। उसे अपने सत्य और माताजी की प्रेमभरी स्वीकृति का विश्वास होगा।

श्रीअरविन्द

सम्पादकीय : सर्वांगीण या पूर्ण योग, जैसा कि नाम ही दर्शाता है, अपने प्रयोग तथा आयामों में समुद्र-सम विशाल है। "पूर्ण योग पर विहंगम दृष्टि"—इस अंक में हमारा प्रयास है कि श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ की कृतियों से कुछ-एक मोती चुन कर हम पूर्ण योग की सम्पूर्ण समृद्धि और उसके असीम विस्तार पर किञ्चित् चञ्चुपात करें। माँ-श्रीअरविन्द ने उस असीम को ऐसे समझाया है कि वह हमारी समझ की सीमा में समा सके और इस तरह साधक आध्यात्मिक प्रयास के ज़रिये उसे अपने दैनन्दिन जीवन में व्यवहार में ला सके। अतः, इस अंक में दी जा रही हैं उस यात्रा की कुछ रूप-रेखाएँ, साधक को थमायी जा रही है उसकी चेतना के विकास तथा उसके आन्तरिक तथा बाह्य जगतों की आध्यात्मिकता तथा दिव्यता के उद्‌घाटन की कुञ्जी। अतः, स्वाभाविक है कि यह अंक साधना, योग तथा रूपान्तर के विभिन्न पक्षों का स्पर्श करता हुआ बढ़ता है।

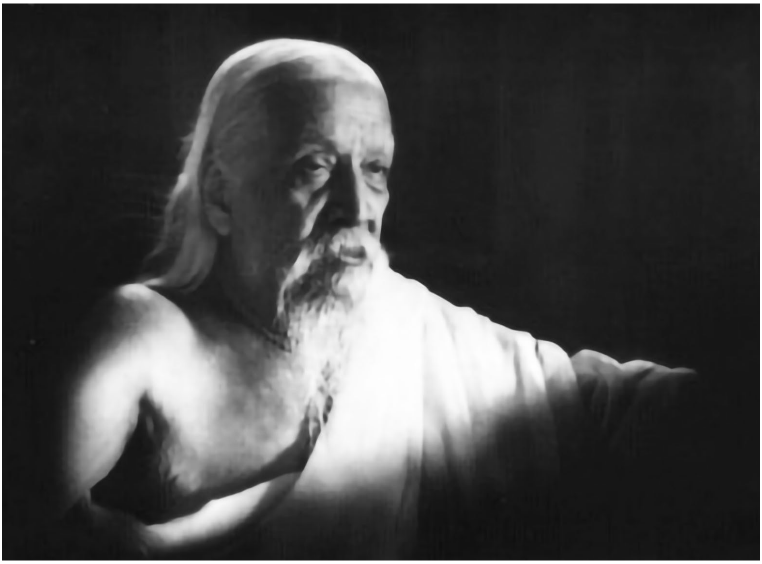

योग की चार शक्तियाँ तथा चार उद्देश्य

योग की चार शक्तियाँ और चार उद्देश्य हैं—शुद्धि, मुक्ति, परमानन्द और पूर्णता। जिस किसी ने परात्पर, वैश्व, लीलामय और वैयक्तिक भगवान् की सत्ता में इन चार महानताओं को सम्पन्न कर लिया, वह पूर्ण और निपरेक्ष योगी है।

भगवान् की सभी अभिव्यक्तियाँ निरपेक्ष परब्रह्म की अभिव्यक्तियाँ हैं।

CWSA खण्ड, १२, पृ. ९३

साधना

साधना, तपस्या, आराधना, ध्यान

योग का अभ्यास करना साधना है। तपस्या है, साधना के परिणामों को पाने और निम्न प्रकृति पर विजय पाने के लिए संकल्प-शक्ति की एकाग्रता। आराधना है—भगवान् की पूजा, प्रेम, आत्म-समर्पण, भगवान् के लिए अभीप्सा, उनके नाम की टेर लगाना तथा प्रार्थना। ध्यान है—चेतना की आन्तरिक एकाग्रता, निदिध्यासन, अन्दर समाधि में लीन रहना। ध्यान, तपस्या और आराधना सभी साधना के भाग हैं।

CWSA खण्ड, २९, पृ. २१५

साधना में धीरज आवश्यक है

साधना ऐसी वस्तु है जो समय लेती और धीरज की माँग करती है। उसमें प्रायशः ऐसे निश्चल काल आते हैं जिनमें साधना का कार्य पीछे चलता रहता है, लेकिन व्यक्ति उसके प्रति सचेतन नहीं होता—तब सब कुछ निष्क्रिय, मन्द लगने लगता है; लेकिन अगर व्यक्ति के अन्दर धीरज और विश्वास हों तो इस अवधि में चेतना नये उद्‌घाटनों और उन चीज़ों की ओर अन्दर-ही-अन्दर बढ़ती रहती है जो पहले प्रभाव डालने में असम्भव प्रतीत होती थीं, और फिर अचानक वह देखता है कि चीज़ें सम्पन्न हो गयीं। ताबड़तोड़ जल्दी मचाने का आवेश हमेशा ग़लत होता है—पथ पर आग्रहपूर्वक डटे रहना ही वह एकमात्र नियम है जिससे व्यक्ति को कस कर चिपके रहना चाहिये और तब, अन्ततोगत्वा सभी बाधाओं पर जीत हासिल हो जायेगी।

CWSA खण्ड, २९, पृ. १११

भगवान् के लिए सच्ची साधना

भगवान् के लिए अभीप्सा करना ही यहाँ एकमात्र प्रश्न है—चाहे वह तुम्हारे जीवन का केन्द्रीय लक्ष्य, तुम्हारी आन्तरिक आवश्यकता हो या न हो। स्वयं अपने लिए साधना करना अलग विषय है—व्यक्ति इसे कर सकता है, नहीं भी कर सकता। सच्ची साधना भगवान् के लिए होती है

—यह अन्तरात्मा की आवश्यकता है। भले दुःख और उदासी के क्षणों में वह यह सोचने लगे कि इसे हमेशा के लिए छोड़ देगा, लेकिन वह इसका त्याग नहीं कर सकता।
CWSA खण्ड, २९, पृ. २४०

हृदय तथा मस्तिष्क में एकाग्रता

हृदय में एकाग्रता तथा मस्तिष्क में एकाग्रता दोनों का उपयोग किया जा सकता है—प्रत्येक का अपना-अपना परिणाम होता है। पहला चैत्य पुरुष को उद्‌घाटित करता है और भक्ति, प्रेम तथा श्रीमाँ के साथ एकत्व, हृदय में उनकी उपस्थिति तथा प्रकृति में उनकी शक्ति की क्रिया लाता है। दूसरा आत्मसिद्धि की ओर, मन के ऊपर की चेतना की ओर, शरीर के बाहर चेतना के आरोहण की ओर तथा उच्चतर चेतना का शरीर में अवरोहण की ओर मन को उद्‌घाटित करता है।
CWSA खण्ड २९, पृ. ३२६

साधना ज़रूरी है

अगर साधारण प्रकृति की आदतें साधना में आड़े नहीं आतीं तो साधना की ज़रूरत ही क्या है? कौन-सी चीज़ समस्त उच्चतर चेतना को नीचे उतरने और पलक झपकाते ही तुम्हें अतिमानव में बदलने में बाधक होती है? इसका कारण यह है कि निम्नतर प्रकृति की चीज़ें हठी प्रतिरोध खड़े कर देती हैं और इसी वजह से लम्बी साधना ज़रूरी हो जाती है।
CWSA खण्ड ३०, पृ. ४८७

साधना के लिए उत्तम मनोभाव

श्रीमाँ के ऊपर निर्भर रहना ही साधना के लिए उत्तम मनोभाव है, क्योंकि वास्तव में उन्हीं की 'शक्ति' तुम्हारे अन्दर साधना करती है।
CWSA खण्ड, ३१, पृ. २७६

प्रत्येक साधक अपनी भिन्न साधना करता है

प्रत्येक साधक की अपनी भिन्न साधना होती है, अपनी ही कठिनाइयाँ

होती हैं, उसका अनुसरण करने की उसकी अपनी ही पद्धति होती है। उसकी साधना उसके और भगवान् के बीच होती है; और किसी का उसमें कोई भाग नहीं होता।

CWSA खण्ड ३१, पृ. ६३०

प्रभु को कार्य करने देने का उत्तम तरीक़ा

साधना है—उच्चतर इच्छा तथा स्वभाव की पुरानी शक्तियों के बीच संघर्ष जो तुम्हारे अन्दर क्लेश-दुःख और आन्तरिक सन्त्रास ले आता है, हम नहीं चाहते कि तुम उस तरह की साधना करो। हमारे योग का यह सार नहीं है। तुम्हारे लिए हम जो चाहते हैं वह यह है कि तुम अपनी शान्ति तथा अचञ्चलता दोबारा पा लो और उसी के साथ साधना में लगे रहो। शान्ति के आधार का होना और 'भागवत शक्ति' को अपने अन्दर दृढ़ता के साथ चुपचाप कार्य करने देना हमेशा उत्तम तरीक़ा होता है—बड़े व्यक्तिगत प्रयासों, विक्षोभों तथा संघर्षों के साथ आगे बढ़ने की कोई ज़रूरत ही नहीं है। फिर से इस पर आ जाओ—दोबारा स्वयं को उद्‌घाटित कर दो, जैसा कि तुमने पहले किया था—तब एक-दो दिन में तुम फिर से अपनी नींद और स्वास्थ्य पा लोगे और बिना किसी अतिरिक्त मुश्किल के आन्तरिक रूप से बढ़ते रहोगे—साथ ही, श्रीमाँ की 'शक्ति' तथा 'कृपा' को अपना दिग्दर्शन करने दो।

CWSA खण्ड ३१, पृ. ७४६

योग, साधना, ध्यान

योग है भगवान् के साथ सायुज्य, साधना है भगवान् के साथ एक होने के लिए तुम जिस पथ का अनुसरण करते हो। तुम्हें सामान्य मानव चेतना से हट कर भागवत परम चेतना के साथ सम्पर्क साधना होगा।

और इसके लिए हमेशा श्रीमाँ को टेर लगाओ, अपने-आपको उनके प्रति खोलो, यह अभीप्सा और प्रार्थना करो कि उनकी शक्ति तुम्हारे अन्दर कार्य करे ताकि तुम उनके उपयुक्त यन्त्र बन सको—प्राण तथा मन की लोभ-लालसा, विक्षोभ-चञ्चलता को त्याग दो। ध्यान का अर्थ है कि तुम मन तथा प्राण को अचञ्चल बनाओ तथा श्रीमाँ की 'शान्ति', माँ की 'उपस्थिति',

उनके 'प्रकाश', 'शक्ति' तथा 'आनन्द' को पाने की अभीप्सा में निरत रहो।
CWSA खण्ड ३२, पृ. १३५

भागवत शक्ति शून्य में कार्य नहीं कर सकती

साधना आवश्यक है और भागवत शक्ति शून्य में कार्य नहीं कर सकती, बल्कि उसे तो प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव के अनुसार उस बिन्दु तक ले जाना होगा जहाँ वह यह अनुभव कर सके कि उसके अन्दर श्रीमाँ का कार्य चल रहा है और वे उसके लिए सब कुछ कर रही हैं। तब तक साधक की अभीप्सा, आत्म-समर्पण, स्वीकृति तथा श्रीमाँ के कार्य के लिए अनुमोदन, जो कुछ उसके रास्ते में बाधक बने उस सबका त्याग—यह सब बहुत आवश्यक है, सचमुच अनिवार्य है।
CWSA खण्ड ३२, पृ. १३७

साधना का लक्ष्य

यह सच है कि प्रत्येक सत्ता वैश्व शक्ति का एक यन्त्र है, अतः श्रीमाँ का ही यन्त्र है। लेकिन साधना का लक्ष्य है कि अचेतन होकर अपूर्ण यन्त्र बनने की जगह सचेतन तथा सर्वांगपूर्ण यन्त्र बना जाये। तुम केवल तभी सचेतन तथा पूर्ण यन्त्र या माध्यम बन सकते हो जब तुम और अधिक निम्नतर चेतना के अज्ञानी धक्के के चले नहीं चलते, बल्कि माँ के प्रति समर्पण के सहारे आगे बढ़ते हो और अपने अन्दर उनकी उच्चतर 'चेतना' के प्रति अभिज्ञ होते हो कि वही तुम्हारे अन्दर क्रिया कर रही है। तो, यहाँ भी तुम्हारी अन्तःप्रेरणा एकदम सच थी।
CWSA खण्ड ३२, पृ. २४३

भागवत शक्ति के प्रति अपने-आपको खोलो

इस साधना में केवल एक ही चीज़ की ज़रूरत है, वह है—अपने-आपको भागवत शक्ति के प्रति खोलना; अगर व्यक्ति खुला हुआ हो तो आध्यात्मिक अनुभूति के साथ आवश्यक समझ या ज्ञान अपने-आप ही आ जायेगा।
CWSA खण्ड ३५, पृ. ४४८

बहुत से योग हैं

बहुत से योग हैं, कई आध्यात्मिक अनुशासन हैं, मुक्ति तथा पूर्णता की ओर ले जाने वाले पथ हैं, ईशत्व की ओर आत्मा के बढ़ने के तरीक़े हैं। प्रत्येक का अपना भिन्न लक्ष्य होता है, एकमेव 'वास्तविकता' की ओर जाने का अपना विशेष तरीक़ा, अपनी भिन्न प्रक्रिया, अपना सहायक दर्शन तथा क्रियान्वित करने की प्रक्रिया होती है। पूर्ण योग इन सभी के सारतत्त्व को अपना कर उनके सभी लक्ष्यों, तरीक़ों तथा उपगमनों के साथ एक एकीकरण (ब्योरे में नहीं, बल्कि सार में) तक पहुँचने की कोशिश करता है; वह ऐसे दर्शन और ऐसे अभ्यास को अपनाता है जो सबको अपने साथ लिये चलता है।

CWSA खण्ड १२, पृ. ३५६

भगवान् में प्रवेश केवल चिन्तनशील मन या हृदय के द्वारा नहीं किया जा सकता; न ही कार्य में इच्छा-शक्ति के तरीक़े अथवा अपनी प्रकृति के मनोवैज्ञानिक परिवर्तन या शरीर में प्राणिक शक्ति की मुक्ति का होना ही पर्याप्त है। हालाँकि इन सभी का साथ होना बहुत आवश्यक है, लेकिन हमारे सभी संवेदनों, शारीरिक चेतना, जड़-भौतिक निश्चेतना तक को भगवान् के बारे में सचेतन होना तथा उनके साथ उनकी प्रदीप्ति में एक होना होगा। भगवान् के साथ सायुज्य प्राप्त करना, भगवान् में तथा उनके साथ निवास करना, भगवान् की प्रकृति के साथ एक होना—यही होना चाहिये हमारे योग का उद्देश्य।

CWSA खण्ड १२, पृ. ३५७

क्या है पूर्ण योग?

यह है पूर्ण ईश्वरोपलब्धि, पूर्ण आत्मोपलब्धि, हमारी सत्ता और चेतना की सम्पूर्ण उपलब्धि, हमारी प्रकृति का सम्पूर्ण रूपान्तरण—और इसका अर्थ है, और किसी स्थान पर शाश्वत पूर्णता में लौट जाना नहीं, बल्कि यहाँ, इस धरती पर शाश्वत पूर्णता प्राप्त करना।

यही है लक्ष्य, लेकिन इसे पाने की प्रक्रिया में भी वही समग्रता होती है, क्योंकि पूर्णता पाने के हमारे लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए प्रक्रिया भी पूर्ण-सर्वांगीण होनी चाहिये, पूरा उलटाव, पूर्ण उद्घाटन, अपनी सत्ता तथा प्रकृति का उसके सभी भागों, तरीक़ों तथा गतियों में 'उसके' प्रति समर्पण होना चाहिये जिसे हम चरितार्थ करना चाहते हैं।

हमारा मन, संकल्प, हृदय, जीवन, शरीर, हमारा बाह्य और आन्तरिक तथा अन्तरतम अस्तित्व, हमारी परा-चेतना और अव-चेतना, और साथ ही हमारे सभी सचेतन भाग—सबको पूरी तरह से हमें समर्पित कर देना चाहिये, इन सबको इस उपलब्धि और रूपान्तरण का साधन तथा क्षेत्र बनना चाहिये, इन्हें इस प्रबोधन में भाग लेना चाहिये और मनुष्य का भागवत चेतना तथा प्रकृति में परिवर्तन हो जाना चाहिये।

यही है पूर्ण योग का लक्षण तथा वैशिष्ट्य।

CWSA खण्ड १२, पृ. ३५८

पूर्ण योग का अर्थ

पूर्ण योग का अर्थ है—

१. केवल ज्ञान, भक्ति अथवा कर्मयोग के द्वारा भगवान् तक पहुँचने की बजाय व्यक्ति अपनी चेतना तथा सत्ता के सभी हिस्सों तथा शक्तियों के द्वारा इन तीनों को एक करके तथा अन्य बहुत से योगों को जोड़ कर एकमेव योग में उनकी तलाश करे, सभी चेतनाओं तथा सभी सत्ताओं में प्रभु की ही उपस्थिति, चेतना, शक्ति, प्रकाश तथा आनन्द को ग्रहण करे।

२. व्यक्ति न केवल अन्तरात्मा तथा स्व में भगवान् की उपलब्धि की खोज करे बल्कि समस्त प्रकृति में भी (इसका अर्थ है, निम्न मानव को भगवान् की आध्यात्मिक प्रकृति में रूपान्तरित करना)।

३. वह भगवान् को न केवल जीवन के परे (जन्म के समाप्त हो जाने पर) बल्कि स्वयं जीवन में, जीवन के लिए खोजे ताकि स्वयं जीवन भी भगवान् की उपलब्धि तथा भागवत प्रकृति की एक अभिव्यक्ति बन जाये।
CWSA खण्ड २९, पृ. ३७३

इस योग का उद्देश्य

यह योग अतिमन में भगवान् के साथ सचेतन सायुज्य तथा व्यक्ति के स्वभाव के रूपान्तर की ओर निशाना बाँधता है। सामान्य योग सीधा मन से वैश्व 'निश्चल-नीरवता' की किसी सामान्य अवस्था की ओर बढ़ता है और वहाँ से होता हुआ ऊपर 'उच्चतम' में विलीन हो जाने की कोशिश करता है। इस योग का उद्देश्य है, मन को पार करके सच्चिदानन्द के 'भागवत सत्य' में प्रवेश करना जो न केवल स्थायी बल्कि ऊर्जाशील भी होता है, और समस्त सत्ता को उस 'सत्य' की ओर उठा लेना।
CWSA खण्ड २९, पृ. ४१२

पूर्ण योग का उद्देश्य

यहाँ जिस योग का अनुसरण किया जाता है उसका उद्देश्य दूसरे योगों से अलग है—क्योंकि इस योग का उद्देश्य न केवल अज्ञानी जागतिक चेतना से निकल कर भागवत चेतना में प्रवेश करना है बल्कि उस भागवत चेतना की अतिमानसिक शक्ति को नीचे मन, प्राण तथा शरीर में उतारना है ताकि वह उनका रूपान्तरण कर दे, यहाँ भगवान् को अभिव्यक्त कर, जड़-भौतिक में

भागवत जीवन का निर्माण कर दे। यह एक अत्यन्त मुश्किल लक्ष्य है और अत्यन्त कठिन योग; कइयों को, या यह कहें कि अधिकतम को यह योग असम्भव लगेगा। जगत् की चेतना की सभी सामान्य अज्ञानी शक्तियाँ—जो यहाँ पूरी तरह से जमी हुई हैं—इस नूतन योग के विरुद्ध हैं, इसे नकारती हैं और इसके रास्ते बाधा बन कर आ खड़ी होती हैं और तब साधक अपने मन, प्राण और शरीर को इन घोरतम बाधाओं से घिरा पायेगा जो उसकी उपलब्धि में अड़ंगा लगायेंगी। अगर तुम अपने आदर्श पर जी-जान से डटे रहो, सभी बाधाओं का दृढ़ता से सामना करो, अपने अतीत और उसके पुछल्लों को पीछे कहीं दूर छोड़ दो, सब कुछ का त्याग कर दो और इस भागवत सम्भावना की चरितार्थता के लिए हर तरह का ख़तरा मोलने के लिए तैयार रहो, तभी, केवल तभी तुम अपनी अनुभूति द्वारा इस जगत् के पीछे का 'रहस्य' खोज निकालने की आशा कर सकते हो।

इस योग की साधना किसी बँधी-बँधायी मानसिक शिक्षा अथवा मन्त्र या ध्यान इत्यादि के लिए लिखित किसी प्रणाली के सहारे नहीं चलती, बल्कि यह आगे बढ़ती है अभीप्सा द्वारा, आन्तरिक या ऊर्ध्वमुखी आत्म-एकाग्रता द्वारा, उच्च प्रभाव तथा ऊपर स्थित 'दिव्य शक्ति' और उसकी क्रिया के प्रति आत्मोद्घाटन द्वारा, हृदय में स्थित 'दिव्य उपस्थिति' के प्रति आत्म-समर्पण द्वारा और उन सभी के त्याग द्वारा जो इन चीज़ों के विरोध में खड़ी रहती हैं। केवल श्रद्धा, अभीप्सा तथा समर्पण के द्वारा ही आत्मोद्घाटन हो सकता है। CWSA खण्ड २९, पृ. १९-२०

पुरातन योगों की तुलना में यह नूतन है :

१. क्योंकि इसका लक्ष्य इस धरती को छोड़ कर कहीं स्वर्ग या निर्वाण की ओर प्रस्थान करना नहीं है, बल्कि यहाँ धरती के जीवन और अस्तित्व को बदलना है, वह भी कोई गौण या प्रासंगिक बदलाव नहीं, बल्कि हमारे योग का स्पष्ट तथा केन्द्रीय लक्ष्य है। दूसरे योगों में अगर अवतरण हुआ भी है, फिर भी वह आरोहण, अर्थात् ऊपर चढ़ने के मार्ग में एक घटना के रूप में ही हुआ है—वहाँ आरोहण ही वास्तविक चीज़ है। हमारे योग में आरोहण पहला चरण है, लेकिन है यह अवतरण के लिए एक साधन ही। यहाँ नयी चेतना का धरती पर अवतरण ही—जिसे आरोहण द्वारा पाया जाता है—हमारी साधना की छाप तथा मोहर है। यहाँ तक कि तन्त्र और

वैष्णववाद भी जीवन से मुक्ति को ही अन्तिम चरण मानते हैं; यहाँ, हमारा लक्ष्य है—जीवन में भागवत उपलब्धि प्राप्त करना।

२. क्योंकि यहाँ जिस लक्ष्य का अनुसरण किया जाता है वह केवल मनुष्य के लिए भागवत सिद्धि की व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं है, बल्कि स्वयं यहाँ, पृथ्वी की चेतना के लिए किसी लाभप्रद वस्तु को उतार लाना है, वह उपलब्धि विश्व में हो, विश्व के परे जाकर कोई परावैश्व सिद्धि न हो। इसके साथ-साथ यहाँ 'चेतना' की एक 'शक्ति' (अतिमानसिक) को उतार लाना है जो पार्थिव प्रकृति में, यहाँ तक कि आध्यात्मिक जीवन में भी अभी तक प्रत्यक्ष रूप में व्यवस्थित या सक्रिय नहीं हुई है, लेकिन जिसे व्यवस्थित करना और प्रत्यक्षतः सक्रिय बनाना ही है।

३. क्योंकि इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एक ऐसे तरीक़े की घोषणा की जा चुकी है जो हमारे सम्मुख रखे लक्ष्य की तरह परिपूर्ण और सर्वांगीण है; अर्थात्—चेतना और प्रकृति का पूर्ण तथा आद्योपान्त परिवर्तन, जिसमें पुराने तरीक़ों का भी उपयोग बस इसलिए किया जाये कि जिससे वर्तमान को सँवारने में मदद मिले। मैंने ऐसी पद्धति (अपने पूर्ण रूप में) या इस तरह की किसी भी पद्धति की घोषणा या चरितार्थता की बात किन्हीं भी पुराने योगों में नहीं सुनी। अगर मैंने सुनी होती तो मुझे नया पथ गढ़ने और अपनी तीस साल की खोज और आन्तरिक रचना में अपना समय नहीं गँवाना चाहिये था; तब तो मुझे बने-बनाये, सुनिर्धारित, अच्छी तरह से मानचित्रित, पुख़्ता, सुरक्षित तथा सार्वजनिक पथों पर सरपट दौड़ लगा देनी चाहिये थी। हमारे योग का लक्ष्य पुरानी सड़कों पर चलना नहीं बल्कि एक आध्यात्मिक अभियान है।

CWSA खण्ड २९, पृ. ३९९-४०१

श्रीमाँ की ओर मुड़ा हुआ प्रत्येक व्यक्ति योग कर रहा है

वह प्रत्येक व्यक्ति जो श्रीमाँ की ओर मुड़ा हुआ है, मेरा योग कर रहा है। यह मानना बड़ी भूल है कि तुम पूर्ण योग "कर" रहे हो, यानी यह मानना कि तुम स्वयं अपने प्रयास के द्वारा योग के सभी पहलुओं को क्रियान्वित और संसिद्ध कर रहे हो। कोई मानव सत्ता यह नहीं कर सकती। तुम्हें करना यह चाहिये कि स्वयं को माँ के हाथों में सौंप दो और उनकी

सेवा, भक्ति, अभीप्सा के द्वारा अपने-आपको उनकी ओर खोलो; तब अपने प्रकाश और शक्ति द्वारा माँ तुम्हारे अन्दर कार्य करेंगी ताकि साधना की जा सके। महान् पूर्ण योगी या अतिमानसिक सत्ता बनने की महत्त्वाकांक्षा रखना और पग-पग पर अपने-आपसे यह पूछना, 'मैं उसकी ओर कितना बढ़ चुका हूँ'—बड़ी भूल है। उचित मनोभाव है—स्वयं को माँ की भक्ति में डुबो दो और वही चाहो जो माँ चाहती हैं कि तुम बनो। बाक़ी सब माँ पर निर्भर करता है कि वे तुम्हारे लिए क्या निश्चय करती हैं और तुम्हारे अन्दर कैसे क्रिया करती हैं।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १५१-५२

अपने सभी क्रिया-कलापों को भगवान् को अर्पित कर दो

योग का अर्थ है, भगवान् के साथ सायुज्य, और यह सायुज्य आता है आत्मदान द्वारा—भगवान् के प्रति आत्मदान ही इसका आधार है। आरम्भ में तुम यह आत्मदान सामान्य रूप से शुरू करते हो, मानों सदा के लिए तुम्हारा यह काम पूरा हो गया; तुम कहते हो: "मैं भगवान् का सेवक हूँ; मेरा जीवन पूर्ण रूप से भगवान् को दे दिया गया है, मेरे सभी प्रयत्न 'दिव्य जीवन' की प्राप्ति के लिए हैं।" पर यह तो केवल पहला क़दम है; क्योंकि इतना ही पर्याप्त नहीं है। इस संकल्प के बाद भी, इस निश्चय के बाद भी कि तुम अपने समग्र जीवन को भगवान् के अर्पण कर दोगे, तुम्हें यह बात अपने जीवन में प्रत्येक क्षण याद रखनी होगी और प्रत्येक ब्योरे में चरितार्थ करनी होगी। तुम्हें प्रत्येक पग पर यह अनुभव होना चाहिये कि तुम भगवान् के हो; तुम्हें हमेशा यह अनुभूति होनी चाहिये कि तुम जो कुछ भी सोचते या करते हो, उसमें हमेशा 'भागवत चेतना' ही तुम्हारे द्वारा कार्य करती है। अपनी कह सकने के लिए अब तुम्हारे पास कोई चीज़ नहीं होती; हर चीज़ भगवान् के यहाँ से आयी हुई अनुभव करो और उसे उसके मूल स्रोत की भेंट कर दो। इस अनुभूति को प्राप्त कर लेने पर अत्यन्त सामान्य-से-सामान्य चीज़ जिस पर तुम ध्यान नहीं देते या जिसकी साधारणतः परवाह नहीं करते, वह भी अकिञ्चन या तुच्छ नहीं रह जाती, वह अर्थपूर्ण हो जाती है और दूर-दूर तक देख सकने के लिए एक विशाल क्षितिज खोल देती है।

सामान्य रूप से किये गये आत्मदान को जीवन के प्रत्येक ब्योरे में लाने का तरीक़ा यह है : हमेशा भगवान् की उपस्थिति में ही निवास करो; इस अनुभूति में रहो कि यह उपस्थिति ही तुम्हारी प्रत्येक क्रिया को गति देती है और जो कुछ तुम करते हो उसे वही कर रही है। अपने सभी क्रिया-कलापों को इसी को समर्पित कर दो, केवल प्रत्येक मानसिक क्रिया, प्रत्येक विचार और भाव को ही नहीं, बल्कि अत्यन्त साधारण और बाह्य क्रियाओं को भी; उदाहरणार्थ, भोजन भी उसी को अर्पित कर दो; जब तुम भोजन करो तो तुम्हें अनुभव होना चाहिये कि इस क्रिया में तुम्हारे द्वारा भगवान् ही भोजन कर रहे हैं। जब तुम इस प्रकार अपनी समस्त प्रवृत्तियों को एक 'अखण्ड जीवन' में एकत्रित कर सकोगे तब तुम्हारे अन्दर भेदभाव की जगह एकता होगी। तब यह अवस्था न रहेगी कि तुम्हारी प्रकृति का एक भाग तो भगवान् को समर्पित हो और बाक़ी भाग अपनी साधारण वृत्तियों में पड़े रहें और साधारण चीज़ों में लिप्त रहें, बल्कि तब तुम्हारे सम्पूर्ण जीवन को भगवान् अपने हाथ में ले लेंगे और क्रमशः तुम्हारी प्रकृति का सम्पूर्ण रूपान्तर होने लगेगा।

पूर्ण योग में छोटे-से-छोटे ब्योरे के साथ सम्पूर्ण जीवन का रूपान्तर करना होगा, उसे दिव्य बनाना होगा। यहाँ कोई चीज़ नगण्य या तुच्छ नहीं है। तुम यह नहीं कह सकते : "जब मैं ध्यान करता हूँ, दर्शनशास्त्र-सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ता हूँ या ऐसे वार्तालाप सुनता हूँ तब तो मैं भागवत ज्योति की ओर खुलने और उसे बुलाने की अवस्था में रहूँगा, किन्तु जब मैं टहलने जाऊँ या किसी मित्र से मिलूँ तब मैं इन बातों को भुला सकता हूँ।" इस भाव को बनाये रखने का अर्थ होगा कि तुम्हारा रूपान्तर कभी न हो सकेगा और तुम्हें भगवान् के साथ सच्चा सायुज्य कभी प्राप्त न होगा। तुम्हारे सदा दो भाग बने रहेंगे; अधिक-से-अधिक तुम्हें इस महत्तर जीवन की कुछ झाँकियाँ मिल सकेंगी। हो सकता है कि ध्यान के समय तुम्हें अपनी आन्तरिक चेतना में कुछ अनुभूतियाँ और उपलब्धियाँ प्राप्त हो जायें, पर तुम्हारा स्थूल शरीर और तुम्हारा बाह्य जीवन तो रूपान्तरित हुए बिना ही रह जायेगा। जिस आन्तर प्रकाश का शरीर और बाह्य जीवन पर कोई असर नहीं होता वह किसी विशेष उपयोग का नहीं होता, क्योंकि वह तो जगत् को जैसा-का-तैसा छोड़ देता है।...

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. २७-२९

योग की केन्द्रीय प्रक्रिया

ऊपर की ओर खुलने वाले अनुभव

इस बात पर भी ध्यान देना चाहिये कि ऊपर की ओर होने वाला उद्घाटन अनिवार्य रूप से केवल शान्ति, निश्चल-नीरवता और निर्वाण की ओर ही नहीं ले जाता। साधक केवल हमारे ऊपर, मानों हमारे सिर के ऊपर स्थित, तथा सभी भौतिक और अतिभौतिक आकाश में विस्तृत होती हुई एक महान् और अन्ततः असीम शान्ति, नीरवता और विशालता के विषय में ही सचेतन नहीं हो जाता बल्कि अन्य वस्तुओं के सम्बन्ध में भी सचेतन हो सकता है—एक विशाल शक्ति के बारे में जिसमें सर्वशक्ति स्थित है, एक विशाल प्रकाश के बारे में भी जिसमें सर्वज्ञान विद्यमान है, एक विशाल आनन्द के बारे में जिसमें सम्पूर्ण आनन्द और हर्षोल्लास का अस्तित्व है। पहले तो वे कोई सारभूत, अनिर्धार्य, चरम, एकमात्र, केवल वस्तु जैसे प्रतीत होते हैं: इनमें से किसी भी वस्तु में लय होना सम्भव दिखायी देता है, लेकिन यह बात भी हमारी दृष्टि में आ सकती है कि इस शक्ति में सभी शक्तियाँ, इस प्रकाश में सभी प्रकाश, इस आनन्द में सभी हर्ष एवं आनन्द समाये हुए हैं। और यह सब हमारे अन्दर अवतरित हो सकता है। इनमें से कोई एक या सब के सब नीचे आ सकते हैं, केवल शान्ति ही नहीं; सबसे अधिक सुरक्षित है पहले केवल एक चरम स्थिरता और शान्ति को नीचे उतार लाना, क्योंकि उसके कारण अन्यों का अवतरण अधिक सुरक्षित हो जाता है; अन्यथा बाह्य प्रकृति के लिए इतनी अधिक शक्ति, प्रकाश, ज्ञान या आनन्द को अपने अन्दर धारण या सहन करना कठिन हो सकता है। ये सब वस्तुएँ मिल कर उस चेतना का निर्माण करती हैं जिसे हम उच्चतर आध्यात्मिक या भागवत चेतना कहते हैं। हृदय के द्वारा चैत्य का उन्मीलन होने पर वह चेतना पहले वैयक्तिक भगवान् के साथ, अर्थात् जो भगवान् हमारे साथ आन्तरिक सम्बन्ध बनाये हुए हैं उनके साथ हमारा सम्बन्ध स्थापित कर देती है; यह विशेषकर प्रेम और भक्ति का मूल स्रोत है। यह ऊर्ध्वमुख उन्मीलन समग्र भगवान् के साथ हमारा सीधा सम्बन्ध स्थापित कर देता है और हमारे अन्दर दिव्य चेतना का और आत्मा का नवजन्म या जन्मों का निर्माण कर सकता है।

ऊपर से भागवत शक्ति उतर सकती है

जब शान्ति स्थापित हो जाती है तो यह उच्चतर या भागवत शक्ति ऊपर से उतर सकती है और हमारे अन्दर कार्य कर सकती है। यह शक्ति सामान्यतया पहले मस्तक में उतरती है और आन्तरिक मन के चक्रों को मुक्त करती है, फिर हृत्केन्द्र में आती है और चैत्य तथा भावनात्मक सत्ता को पूरी तरह मुक्त करती है, फिर नाभि और अन्य प्राणिक केन्द्रों में आती है एवं आन्तरिक प्राण को मुक्त करती है, फिर मूलाधार में तथा और नीचे की ओर जाती है तथा आन्तरिक शारीरिक सत्ता को मुक्त करती है। यह एक साथ ही मुक्ति और पूर्णता दोनों के लिए कार्य करती है; यह सारी प्रकृति को एक-एक भाग करके हाथ में लेती है और उस पर क्रिया करती है, जिसका त्याग करना है उसको त्याग देती है, जिसे उठाना है उसे उठा देती है, जिसकी रचना करनी है उसकी रचना करती है। यह प्रकृति के अन्दर एक नया ताल-छन्द प्रतिष्ठित करती है, एकसूत्रता और सामञ्जस्य ले आती है। यह उच्चतर प्रकृति की अधिकाधिक ऊँची शक्ति और उसके अधिकाधिक ऊँचे क्षेत्र को तब तक उतारती रह सकती है जब तक कि, यदि यह साधना का लक्ष्य हो, अतिमानसिक शक्ति और सत्ता को उतार लाना सम्भव न हो जाये। हृत्केन्द्र में चैत्य की जो क्रिया होती है वही इस सबकी तैयारी करती है, इस सबमें सहायता देती है, और इस सबको आगे बढ़ाती है; चैत्य पुरुष जितना ही अधिक खुला होता है, सामने होता है, सक्रिय होता है उतनी ही अधिक तेज़ी, सुरक्षा और आसानी से इस शक्ति की क्रिया हो सकती है। हृदय में जितना ही अधिक प्रेम, भक्ति और समर्पण बढ़ते हैं, साधना का विकास भी उतना ही अधिक तीव्र और पूर्ण होता जाता है। कारण, अवतरण और रूपान्तर का अर्थ ही है, संग-संग भगवान् के साथ सम्पर्क और एकत्व का बढ़ते रहना।

CWSA खण्ड ३०, पृ. ३२६-३२७

भगवान् के साथ एकत्व

योग का अर्थ है भगवान् के साथ एकत्व—चाहे यह एकत्व विश्वातीत हो या विश्वगत या व्यक्तिगत हो अथवा, जैसा कि हमारे योग में है, एक साथ यह सब तीनों ही हो। अथवा इसका अर्थ है एक ऐसी चेतना में प्रवेश

करना जिसमें मनुष्य तुच्छ अहं, व्यक्तिगत मन, प्राण और शरीर से अब सीमित नहीं रहता, बल्कि परम आत्मा के साथ या विश्वगत चेतना के साथ या किसी आन्तरिक गभीरतर चेतना के साथ युक्त हो जाता है जिसमें वह अपनी निजी अन्तरात्मा के विषय में, अपनी निजी आन्तर सत्ता के विषय में और जीवन के यथार्थ सत्य के विषय में सचेतन रहता है।

यौगिक चेतना में चले जाने पर मनुष्य केवल वस्तुओं का ही ज्ञान नहीं प्राप्त कर लेता बल्कि शक्तियों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, और केवल शक्तियों का ही नहीं बल्कि शक्तियों के पीछे विद्यमान सचेतन पुरुष का भी ज्ञान प्राप्त कर लेता है। वह इन सब चीज़ों का ज्ञान केवल अपने ही अन्दर नहीं बल्कि विश्व के अन्दर भी प्राप्त कर लेता है।

एक ऐसी शक्ति है जो नयी चेतना की वृद्धि के साथ-साथ आती है, नयी चेतना के साथ-साथ तुरन्त वर्धित होती है तथा उस चेतना को बाहर प्रकट होने तथा पूर्ण बनने में मदद करती है। यह शक्ति है योग-शक्ति। यह हमारी आन्तर सत्ता के सभी चक्रों में कुण्डलित होकर सोयी पड़ी है और सबसे नीचे विद्यमान है। इसे ही तन्त्र में कुण्डलिनी-शक्ति कहा गया है। परन्तु यह हमारे ऊपर भी है, हमारे मस्तक से ऊपर भागवत शक्ति के रूप में विद्यमान है—वहाँ वह कुण्डलित नहीं है, अन्तर्ग्रस्त, निद्रित नहीं है, बल्कि जाग्रत्, ज्ञानपूर्ण, ओजपूर्ण, विस्तारित और विशाल है। यह प्रकट होने के लिए वहाँ प्रतीक्षा कर रही है और इसी शक्ति के प्रति—श्रीमाँ की शक्ति के प्रति—हमें अपने-आपको खोलना होगा। मन में यह दिव्य मानस-शक्ति या विराट् मानस-शक्ति के रूप में व्यक्त होती है और ऐसी प्रत्येक चीज़ को कर सकती है जिसे व्यक्तिगत मन नहीं कर सकता; उस समय यह यौगिक मानस-शक्ति कहलाती है। जब यह उसी तरह प्राण या शरीर में प्रकट होती और कार्य करती है तब वह वहाँ एक यौगिक प्राण-शक्ति या यौगिक देह-शक्ति के रूप में प्रकट होती है। यह बाहर की ओर और ऊपर की ओर भभक कर, अपने को नीचे से विशालता के अन्दर फैला कर इन सभी रूपों में जाग्रत् हो सकती है; अथवा यह अवतरित हो सकती और वहाँ वस्तुओं के लिए एक सुनिश्चित शक्ति बन सकती है। यह नीचे की ओर शरीर में बरस सकती है, कार्य कर सकती, अपना राज्य स्थापित कर सकती, ऊपर से विशालता में फैल सकती, हमारे अन्दर के निम्नतम

को हमारे ऊपर के उच्चतम के साथ जोड़ सकती और व्यक्ति को विराट् वैश्व भाव में या निरपेक्ष और परात्पर में मुक्त कर सकती है।

'श्रीअरविन्द के पत्र' भाग ४, पृ. ६८-६९

इस योग में हम समर्पण पर बहुत आग्रह करते हैं

एक बात और। ऊपर से होने वाले अवतरण की इस प्रक्रिया में और ऊपर की इस क्रिया में यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात है कि व्यक्ति पूरी तरह से अपने ऊपर ही भरोसा न रखे बल्कि गुरु के पथ-प्रदर्शन पर निर्भर रहे तथा जो कुछ भी हो उस सबको निश्चय, निर्णय और फ़ैसले के लिए उनके सामने रख दे। क्योंकि बहुधा होता यह है कि ये निम्नतर प्रकृति की शक्तियाँ इस अवतरण के कारण भड़क उठती हैं और उत्तेजित हो जाती तथा इसके साथ मिल कर इसे अपने लाभ के लिए काम में लाना चाहती हैं। प्रायः ऐसा भी होता है कि ऐसी शक्ति या शक्तियाँ, जिनकी प्रकृति दिव्य नहीं होती, अपने-आपको परम प्रभु अथवा भगवती माता के रूप में प्रस्तुत करती हैं और व्यक्ति से सेवा एवं समर्पण की माँग करती हैं। यदि इन वस्तुओं को स्वीकार कर लिया जाये तो इसके अधिक भयंकर परिणाम होंगे।

यदि सचमुच साधक की केवल भागवत क्रिया के प्रति सहमति हो और उनके पथ-प्रदर्शन के प्रति नमन या समर्पण का भाव हो तो सब कुछ बिना विघ्न-बाधा के आगे बढ़ सकता है। यह सहमति और सब अहंमयी शक्तियों या अहं को आकृष्ट करने वाली सब शक्तियों का परित्याग साधना में शुरू से अन्त तक रक्षा-कवच का काम देता है। किन्तु प्रकृति के मार्ग फन्दों से भरे पड़े हैं, अहं के कपट वेश अगणित हैं, अन्धकार की शक्तियों की भ्रान्तियाँ, अर्थात् राक्षसी माया असाधारण रूप से कुशल होती है; तर्क बुद्धि एक अपूर्ण पथ-प्रदर्शक है और प्रायः विश्वासघाती बन जाती है; प्रत्येक आकर्षक पुकार का अनुसरण करने के लिए ललचाने वाली प्राणिक कामना हमारे साथ सदैव लगी रहती है। यही कारण है कि हम इस योग में उस उच्चतर वस्तु पर अत्यधिक आग्रह रखते हैं जिसे हम समर्पण कहते हैं—अंग्रेज़ी शब्द 'सरेण्डर' (Surrender) द्वारा इसका भाव पर्याप्त रूप से प्रकट नहीं होता। यदि हृत्केन्द्र पूर्ण रूप से खुला रहे और चैत्य सदैव

नियन्त्रण करता रहे तो फिर कोई प्रश्न ही नहीं रहता, सब कुछ सुरक्षित हो जाता है। किन्तु चैत्य किसी भी क्षण निम्नतर वस्तुओं के उभर आने से आच्छादित हो सकता है।

ऐसे लोग बहुत ही कम हैं जो इन ख़तरों से मुक्त होते हैं और ये ठीक वे ही लोग होते हैं जो समर्पण सरलता से कर सकते हैं। इस कठिन प्रयास में ऐसे किसी व्यक्ति का मार्गदर्शन अत्यावश्यक और अनिवार्य होता है जो तादात्म्य के द्वारा स्वयं भगवान् बन गया हो या उनका प्रतिनिधि हो। CWSA खण्ड ३०, पृ. ३२९-३०

दोहरी क्रिया की आवश्यकता

पहले व्यक्ति को अपनी निम्न प्रकृति को जीतना होगा, भागवत प्रकृति में उठती हुई उस उच्चतर आत्मा की सहायता द्वारा उस स्व को मुक्त करना होगा जो निम्न गति में संलग्न रहता है; साथ ही तब व्यक्ति अपने सभी कर्मों को, योग की आन्तरिक क्रिया तक को यज्ञ के रूप में पुरुषोत्तम, परात्पर तथा सर्वव्यापी भगवान् को समर्पित कर देता है। जब व्यक्ति उच्चतर 'स्व' में ऊपर उठ जाता है, उसे ज्ञान प्राप्त होता है और वह मुक्त हो जाता है, तब वह बाक़ी सभी धर्मों का त्याग कर, भगवान् के प्रति अपना सम्पूर्ण समर्पण कर देता है, और वह केवल भागवत 'चेतना', भागवत 'इच्छा' तथा 'शक्ति', भागवत 'आनन्द' में जीता है।

हमारा योग *गीता* के समरूप नहीं है, यद्यपि उसमें *गीता* के योग का समस्त सारतत्त्व समाया हुआ है। अपने योग में हम आरम्भ करते हैं सम्पूर्ण समर्पण के विचार, संकल्प तथा अभीप्सा से, लेकिन साथ-ही-साथ हमें अपनी निम्न प्रकृति को अस्वीकार करना होगा, अपनी चेतना को उससे मुक्त करना होगा, उच्चतर प्रकृति की स्वतन्त्रता में उठते हुए स्व की सहायता से निम्नतर प्रकृति की चेतना में संलग्न स्व को छुटकारा दिलाना होगा। अगर हम यह दोहरी क्रिया न करें तो हम तामसिक अतः अवास्तविक अथवा काल्पनिक समर्पण करने का ख़तरा मोल सकते हैं, तब न हम कोई प्रयास करेंगे, न ही तपस्या, और इस तरह हमारी कोई प्रगति न होगी; या फिर हम कोई राजसिक समर्पण कर बैठेंगे, भगवान् के प्रति नहीं बल्कि भगवान् के बारे में स्व-निर्मित मिथ्या विचार या प्रतिरूप

के प्रति जो हमारे राजसिक अहं को और अधिक बुरा बना देगा।
CWSA खण्ड २९, पृ. ४४२

देव की ओर आरोहण तथा देवत्व का अवतरण

अतिमानसिक योग एक ही साथ भगवान् की ओर आरोहण और सशरीर प्रकृति में देव का अवरोहण है। आरोहण केवल एक-केन्द्रित, सबको इकट्ठा करके ऊर्ध्वमुखी अन्तरात्मा, मन, प्राण और शरीर की अभीप्सा द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। अवरोहण अनन्त और शाश्वत भगवान् की ओर समस्त सत्ता की पुकार के कारण ही हो सकता है। अगर यह पुकार और यह अभीप्सा हों या अगर किसी तरीक़े से उन्हें पैदा किया जा सके और वे सतत बढ़ती रहें और सारी प्रकृति को पकड़ लें तब, केवल तभी अतिमानसिक उन्नयन और रूपान्तर सम्भव हो सकता है।

पुकार तथा अभीप्सा

पुकार और अभीप्सा केवल पहली शर्तें हैं, उनके साथ उनकी प्रभावकारी तीव्रता द्वारा लाया गया भगवान् के प्रति समस्त सत्ता का उद्‌घाटन और पूर्ण समर्पण होना चाहिये। यह उद्‌घाटन सभी स्तरों पर, सभी भागों में प्रकृति का, बिना किसी सीमा के अपने अन्दर महत्तर दिव्य चेतना को ग्रहण करने के लिए पूरी तरह खोल देना है। वह चेतना अब भी इस मर्त्य, अर्ध-चेतन सत्ता के ऊपर और पीछे उपस्थित है और इसे चारों ओर से घेरे हुए है। ग्रहण करने में धारण करने की कोई अक्षमता न होनी चाहिये, सारे तन्त्र में—मन, प्राण, स्नायु या शरीर में—कोई भी चीज़ उसके रूपान्तरकारी दबाव से टूटे नहीं। होनी चाहियें अन्तहीन ग्रहणशीलता, सदा अधिकाधिक शक्तिशाली और अधिकाधिक आग्रही, भागवत शक्ति की क्रिया को सह सकने वाली, सदा बढ़ती हुई क्षमता। अन्यथा कोई भी महान् और स्थायी चीज़ नहीं हो सकती; योग की प्रक्रिया का अन्त स्वास्थ्य-भंग या जड़ता-भरी रुकावट, बेतुके या अनर्थकारी रोध में होगा, उसमें प्रक्रिया के असफल न होने के लिए यह जरूरी है कि वह पूर्ण और सर्वांगीण हो।
CWSA खण्ड १२, पृ. १६९

भगवान् के प्रति उत्तरोत्तर समर्पण

लेकिन चूँकि किसी भी मानव-तन्त्र में यह अन्तहीन ग्रहणशीलता और अक्षय क्षमता नहीं है, इसलिए अतिमानसिक योग केवल तभी सफल हो सकता है जब उतरती हुई भागवत शक्ति व्यक्तिगत सामर्थ्य को बढ़ाती चले और ग्रहण करने वाले बल को प्रकृति में काम करने के लिए उतरने वाली शक्ति के बराबर बनाती चले। यह तभी सम्भव है जब हमारी ओर से सत्ता का भगवान् के हाथों में उत्तरोत्तर समर्पण होता चले। पूरी-पूरी और अक्षय स्वीकृति, और कार्य के लिए जो कुछ ज़रूरी हो उसे हमारे अन्दर भागवत शक्ति को करने देने की साहसपूर्ण तत्परता होनी चाहिये।

मनुष्य अपने ही प्रयास से अपने-आपको मनुष्य से अधिक नहीं बना सकता। मानसिक सत्ता सहायता के बिना अपने-आपको अतिमानसिक आत्मा में नहीं बदल सकती। भागवत प्रकृति का अवतरण ही मानव पात्र को भागवत बना सकता है।

क्योंकि हमारे मन, प्राण और शरीर की शक्तियाँ अपनी सीमाओं के साथ बँधी हैं और वे चाहे जितनी ऊँची उठें, चाहे जितनी विस्तृत हो जायें, वे अपनी स्वाभाविक अन्तिम सीमाओं से ऊपर या विस्तार में उन सीमाओं के परे नहीं फैल सकतीं। फिर भी, मानसिक मनुष्य उसकी ओर खुल सकता है जो उसके परे है और अतिमानसिक 'ज्योति', 'सत्य' और 'शक्ति' को अपने अन्दर काम करने के लिए और वह करने के लिए बुला सकता है जो मन नहीं कर सकता। अगर मन प्रयास से वह नहीं बन सकता जो मन के परे है, तो अतिमानस उतर कर मन को अपने द्रव्य में बदल सकता है।

अगर मनुष्य की विवेकशील स्वीकृति और जागरूक समर्पण अतिमानसिक शक्ति को अपनी निजी गभीर और सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि और लचीली सामर्थ्य के अनुसार काम करने दें तो वह धीरे-धीरे या तेज़ी से हमारी पतित और अपूर्ण प्रकृति में भागवत रूपान्तर ला सकती है।

CWSA खण्ड १२, पृ. १६९-७०

यह अवतरण, यह क्रिया भी अनर्थकारी पतन और संकट की सम्भावना से ख़ाली नहीं है। अगर मानव मन या प्राणिक कामना नीचे उतरती हुई शक्ति को पकड़ ले और उसे अपने सीमित या भूलभरे विचारों या त्रुटिपूर्ण विचारों

और अहंकारी आवेगों के अनुसार काम में लाने की कोशिश करे—इस प्रकार की चीज़ें कुछ हद तक अनिवार्य होती हैं जब तक कि यह निम्नतर मर्त्य कुछ हद तक उस महत्तर अमर प्रकृति के तरीक़े न सीख ले—तब तक ठोकरों, विचलनों, कठिन और अलंघ्य दीखने वाली बाधाओं और घावों और दुःख-दर्द से बचा नहीं जा सकता और मृत्यु और नितान्त पतन भी असम्भव नहीं हैं। जब मन, प्राण और शरीर भगवान् के प्रति सचेतन सर्वांगीण समर्पण सीख लें केवल तभी योग-मार्ग सरल, सीधा, तेज़ और सुरक्षित हो सकता है।

माँ की बाँहों में शिशु-सम अन्तरात्मा

और यह समर्पण और उद्घाटन केवल भगवान् के प्रति होना चाहिये, और किसी के प्रति नहीं। क्योंकि अँधेरे मन या अशुद्ध प्राण-शक्ति के लिए अदिव्य और विरोधी शक्तियों के आगे समर्पण करना और उन्हें भूल से भगवान् मान लेना भी सम्भव है। इससे बढ़ कर और कोई अनर्थकारी भूल नहीं हो सकती। इसलिए हमारा समर्पण समस्त प्रभावों या किसी प्रभाव के प्रति अन्धी, तामसिक निष्क्रियता न होकर, निष्कपट, सच्चा, सचेतन, जागरूक, एकमेव और उच्चतम के प्रति ही होना चाहिये।

दिव्य, अनन्त जननी के प्रति आत्म-समर्पण चाहे जितना कठिन हो, वही हमारा एकमात्र प्रभावकारी उपाय और एकमात्र स्थायी आश्रय है। उनके प्रति आत्म-समर्पण का अर्थ है कि हमारी प्रकृति उनके हाथों का यन्त्र हो, अन्तरात्मा माँ की बाँहों में एक बालक हो।

CWSA खण्ड १२, पृ. १७०-७१

माँ, क्या आप मानती हैं कि मैं आपके प्रति वैसे प्रेम का अनुभव करता हूँ जैसा बालक अपनी माँ के लिए करता है?

बालक का अपनी माँ के प्रति प्रेम सहज तथा निरपेक्ष विश्वास से भरपूर होता है। इस तरह का प्रेम तुम्हारे अन्दर केवल चैत्य उद्घाटन के आधार पर ही हो सकता है, क्योंकि वस्तुतः इसी कारण चैत्य की तुलना बालक के साथ की जाती है। क्योंकि वह भगवान् के प्रति इस सहज तथा पूर्ण विश्वास का अनुभव करता है।

श्रीमाँ

ध्यान

विभिन्न प्रकार के ध्यान

जी हाँ, माताजी, क्योंकि जब हम ध्यान करते हैं, तो क्या चेतना की एकाग्रता नहीं होती?

ध्यान!

सब प्रकार के अलग-अलग ध्यान हैं! साधारणतः लोग जिसे ध्यान कहते हैं वह है, उदाहरण के लिए, कोई विषय या विचार चुन कर उसके विकास का अनुसरण करना या उसका अर्थ समझने की कोशिश करना। उसमें एकाग्रता तो होती है परन्तु उतनी पूर्ण नहीं जितनी स्वयं एकाग्रता में होती है, जिसमें केवल वही बिन्दु रहना चाहिये जिस पर तुम एकाग्र हो रहे हो, उसके सिवा कुछ नहीं। ध्यान ज़्यादा विश्रान्तिमयी क्रिया है, इसमें एकाग्रता से कम तनाव होता है।

जब तुम किसी ऐसी समस्या को समझने की कोशिश करते हो जो तुम्हारे सामने आती है, वह चाहे मनोवैज्ञानिक समस्या हो या परिस्थितिगत, और बैठ कर उसे देखते हो, समस्त सम्भावनाओं को देखते हो, उनकी तुलना करते हो, उनका अध्ययन करते हो, तो यह एक प्रकार का ध्यान है; और जब भी ऐसी कोई चीज़ होती है तो तुम इसे सहज रूप से करते हो। उदाहरण के लिए, जब तुम्हें कोई निर्णय करना होता है और तुम्हें पता नहीं होता कि कौन-सा निर्णय हो, तो, साधारणतः तुम मनन करते हो, अपनी तर्क-बुद्धि की सलाह लेते हो, सभी सम्भावनाओं की तुलना करते हो और फिर अपना चुनाव करते हो... न्यूनाधिक रूप से। हाँ तो, यह एक प्रकार का ध्यान है।

अब, ध्यान का एक और रूप होता है जिसमें हम किसी विचार पर एकाग्र होते हैं, अपने सारे मनोयोग को उस पर इस हद तक केन्द्रित करते हैं मानों बस उसी का अस्तित्व है; तब यह एकाग्रता के समान है, परन्तु समग्र होने की जगह यह केवल मानसिक होती है।

समग्र एकाग्रता के अन्दर प्राण और भौतिक की समस्त गतियों की एकाग्रता भी आ जाती है। एक बिन्दु पर दृष्टि जमाये रखना (त्राटक) बहुत

प्रसिद्ध है। तो देखो, यह भौतिक भी है, तुम्हारी आँखें इस बिन्दु पर लगी रहती हैं, तुम ज़रा भी हिलते-डुलते नहीं... अन्य कुछ भी नहीं... तुम कुछ भी नहीं देखते, उस बिन्दु से अपनी नज़र नहीं हटाते, और सामान्यतः परिणाम यह होता है कि अन्त में तुम वही बिन्दु बन कर रह जाते हो। और मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानती थी जो कहा करता था कि तुम्हें इस बिन्दु के पार हो जाना चाहिये, यह बिन्दु बन जाना चाहिये, यहाँ तक कि उस बिन्दु को पार कर उसकी दूसरी ओर निकल जाना चाहिये, और तब तुम उच्चतर स्तरों की ओर खुलोगे। लेकिन यह सच है कि अगर तुम एक बिन्दु पर पूरी तरह से एकाग्र होने में सफल हो जाओ, तो एक ऐसा क्षण आता है जब पूरा-पूरा तादात्म्य प्राप्त हो जाता है, और एकाग्रता करने वाले और जिस पर एकाग्रता की जा रही है, उन दोनों में कोई अलगाव नहीं रहता। पूर्ण तादात्म्य हो जाता है। तुम अपने और बिन्दु के बीच फ़र्क नहीं कर सकते। यह समग्र एकाग्रता है, जब कि ध्यान विचार की विशेष एकाग्रता है, एकांगी है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ३०३-०५

सारा जीवन अनुभव का क्षेत्र है

"समस्त कार्य" "अनुभव का विद्यालय" है। (श्रीअरविन्द)

हाँ, निश्चय ही। तुम नहीं समझे?

जी नहीं, माताजी।

अगर तुम कुछ न करो तो तुम्हें कोई भी अनुभव नहीं हो सकता। सारा जीवन अनुभव का क्षेत्र है। तुम्हारी हर एक गति, तुम्हारा हर एक विचार, तुम्हारा हर कार्य एक अनुभूति हो सकता है, और उसे *अनुभूति होना ही चाहिये*; और स्वाभाविक है कि विशेष रूप से कार्य अनुभव का क्षेत्र है जहाँ तुम आन्तरिक प्रयास से की गयी सारी प्रगति को प्रयोग में ला सकते हो।

अगर तुम काम किये बिना ध्यान और निदिध्यासन में लगे रहो, तो तुम यह नहीं जान पाते कि तुमने प्रगति की है या नहीं। तुम एक भ्रम में, अपनी प्रगति के भ्रम में रह सकते हो; जब कि अगर तुम अपने-आपको

काम में लगाओ, तो तुम्हारे काम की सभी परिस्थितियाँ, औरों के साथ सम्पर्क, भौतिक व्यस्तता, यह सारा अनुभव का क्षेत्र है ताकि तुम्हें केवल अपनी प्रगति का ही भान न हो बल्कि तुम्हें यह भी मालूम हो कि अभी कितनी सारी प्रगति करनी बाक़ी है। अगर तुम अपने-आपमें ही बन्द रहो, कोई काम न करो, तो तुम पूरी तरह आत्मनिष्ठ भ्रान्ति में रह सकते हो; जिस क्षण तुम अपने कार्य को बहिर्मुख करते और दूसरों के साथ, परिस्थितियों और जीवन की चीज़ों के सम्पर्क में आते हो, तो बिलकुल तटस्थ भाव से तुम्हें पता लगता है कि तुमने प्रगति की है या नहीं, क्या तुम अधिक शान्त, अधिक सचेतन, अधिक सशक्त, अधिक निस्स्वार्थ हो या नहीं, क्या तुम्हारे अन्दर अब कोई कामना, कोई पसन्द, कोई कमज़ोरी, कोई बेईमानी है या नहीं—तुम काम करके इन सबसे अवगत हो सकते हो। लेकिन अगर तुम ध्यान में ही बन्द रहो, जो बिलकुल व्यक्तिगत चीज़ है तो तुम पूर्ण भ्रान्ति में प्रवेश कर सकते हो और हो सकता है कि उसमें से कभी बाहर ही न निकलो और यह मान लो कि तुमने असाधारण चीज़ें प्राप्त कर ली हैं, जब कि वास्तव में तुम्हें बस, यह लगता ही है, यह भ्रान्ति ही है कि तुमने यह पा लिया।

श्रीअरविन्द का यही मतलब है।

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड ७, पृ. ३१९-२०

"जहाँ अन्य योग समाप्त होते हैं, हमारा योग वहाँ से शुरू होता है।"

श्रीअरविन्द ने कहीं लिखा है : "जहाँ अन्य योग समाप्त होते हैं, हमारा योग वहाँ से शुरू होता है।" सामान्यतः योग यथार्थ रूप में इस तादात्म्य की ओर, भगवान् के साथ ऐक्य की ओर ले जाता है—इसीलिए इसे "योग" कहते हैं। और जब लोग यहाँ तक पहुँच जाते हैं तो वे अपने मार्ग के अन्त तक आ जाते हैं और वे सन्तुष्ट हो जाते हैं। लेकिन श्रीअरविन्द ने लिखा है : जहाँ वे समाप्त करते हैं वहाँ से हम शुरू करते हैं; तुमने भगवान् को पा लिया, लेकिन अब ध्यान में न बैठे रहो और इसकी प्रतीक्षा न करो कि भगवान् तुम्हें शरीर से बाहर निकाल लें, क्योंकि अब वह बेकार हो गया है, इसके विपरीत, (तादात्म्य की) इस चेतना के साथ तुम्हें शरीर और जीवन की ओर मुड़ना और रूपान्तर का काम शुरू करना चाहिये

—और यह बहुत अधिक कठिन परिश्रम है। इसी स्थल पर वे घने जंगलों में से रास्ता बनाने की उपमा देते हैं; चूँकि और किसी ने यह काम नहीं किया है, इसलिए जहाँ कोई रास्ता नहीं है वहाँ तुम्हें रास्ता बनाना होगा। लेकिन अन्तःस्थित, अपनी अन्तरात्मा में स्थित भगवान् के साथ ऐक्य का अनिवार्य निर्देश पाये बिना यह करने का प्रयास करना बचकानापन है। तो यह बात है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ३८७-८८

अपने-आपको क्रियाशील बनाने वाला ध्यान

मधुर माँ, "अपने-आपको क्रियाशील बनाने वाले ध्यान" से श्रीअरविन्द का क्या तात्पर्य है?

यह एक ऐसा ध्यान है जिसमें तुम्हारी सत्ता को रूपान्तरित करने की शक्ति होती है। यह एक ऐसा ध्यान है जो तुम्हें आगे बढ़ाता है, यह उस निश्चल-निष्क्रिय ध्यान के विपरीत है जो गतिहीन और अपेक्षाकृत जड़ होता है और जो न तो तुम्हारी चेतना में किसी चीज़ को परिवर्तित करता है और न तुम्हारी जीवन-पद्धति में ही। सक्रिय ध्यान रूपान्तर सिद्ध करने का ध्यान होता है।

साधारणतया लोग सक्रिय ध्यान का अभ्यास नहीं करते। जब वे ध्यान में—अथवा कम-से-कम जिसे वे "ध्यान" कहते हैं—प्रवेश करते हैं, वे एक प्रकार की निश्चलता में प्रवेश कर जाते हैं, जहाँ कुछ भी हिलता-डुलता नहीं—और वे उसमें से ठीक वैसे ही बाहर निकलते हैं जैसे प्रवेश करते समय होते हैं; और न तो उनकी सत्ता में, और न उनकी चेतना में ही कोई परिवर्तन होता है। और वह ध्यान जितना ही अधिक गतिहीन होता है वे उतने ही अधिक प्रसन्न होते हैं। वे इस प्रकार शाश्वत काल तक ध्यान कर सकते हैं, पर इससे न तो विश्व में और न उनके अन्दर ही कभी कोई परिवर्तन आयेगा। यही कारण है कि श्रीअरविन्द सक्रिय ध्यान की बात कह रहे हैं जो इसके एकदम विपरीत है। यह रूपान्तर लाने वाला ध्यान है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. १०७-०८

रूपान्तर

रूपान्तर का अर्थ

रूपान्तर से मेरा मतलब प्रकृति में कुछ परिवर्तन का होना नहीं है —उदाहरण के लिए, मेरा यह अर्थ नहीं है कि सन्त बन जाना या किसी नैतिक पूर्णता को पा लेना या फिर कुछ यौगिक सिद्धियाँ (तान्त्रिकों की भाँति) हस्तगत कर लेना अथवा चिन्मय शरीर प्राप्त कर लेना। रूपान्तर शब्द का उपयोग मैं एक विशेष अर्थ में करता हूँ, मौलिक तथा सम्पूर्ण रूप से चेतना का परिवर्तन और वह परिवर्तन भी एक विशेष प्रकार का होगा कि वह सत्ता के आध्यात्मिक क्रमविकास में एक प्रबल और निश्चित पग आगे बढ़ायेगा, एक महान् तथा उच्च प्रकार की उन्नति लायेगा और एक झटके में ऐसी पूर्णता प्रकट करेगा जो पहले कभी प्रकट नहीं हुई, उसी तरह जैसे जब प्राण तथा जड़-भौतिक पशु-जगत् में मानसिक-भावापन्न चेतना अभिव्यक्त हुई थी तब एक निर्णायक रूपान्तर सम्भव हुआ था, उसी तरह सत्ता में जब अतिमानस का प्रवेश होगा तो एक निर्णायक परम चेतना का आविर्भाव होगा जो सच्चे अर्थ में रूपान्तर लायेगी। अगर इससे कम कुछ भी घटित हो या इस आधार पर कम-से-कम कोई सच्चा आरम्भ न हो, उपलब्धि की ओर मौलिक प्रगति न हो तब मेरा लक्ष्य सिद्ध न होगा। एक आंशिक उपलब्धि, मिश्रित और अनिर्णायक कोई चीज़ हो तो वह जीवन और योग के बारे में मेरी माँग के अनुकूल कतई नहीं हो सकती।

वैयक्तिक सिद्धि और रूपान्तर

तुम दो चीज़ों में भूल कर रहे हो। पहली, इस प्राप्ति (मन, प्राण तथा शरीर का रूपान्तर) का प्रयास नया नहीं है और कुछ योगियों ने इसे पा लिया है, मैं मानता हूँ—लेकिन उस तरीक़े से नहीं जैसा मैं चाहता हूँ। उन्होंने इसे योग-सिद्धि द्वारा—प्रकृति के धर्म के रूप में नहीं—बल्कि व्यक्तिगत सिद्धि के रूप में प्राप्त किया। दूसरी, अतिमानसिक रूपान्तर आध्यात्मिक-मानसिक परिवर्तन नहीं है। यह है—मन, प्राण तथा शरीर का आमूल परिवर्तन जिसे अधिमानसिक-आध्यात्मिक प्राप्त नहीं कर सकता।
CWSA खण्ड २९, पृ. ३९८, ४१४

इस योग तथा पुराने योगों में फ़र्क

इस योग तथा पुराने योगों में यह फ़र्क नहीं है कि वे असमर्थ हैं और इन चीज़ों को नहीं कर सकते—वे इसे पूर्ण रूप से कर सकते हैं—लेकिन वे आत्म-सिद्धि से निर्वाण या किसी 'स्वर्ग' की ओर बढ़ निकलते हैं, जब कि धरती के जीवन को जैसा-का-वैसा छोड़ देते हैं, जब कि हमारा योग जीवन का त्याग नहीं करता। धरती के जीवन तथा सत्ता के रूपान्तर के लिए अतिमानस आवश्यक है, स्व या आत्मा तक पहुँचने के लिए नहीं। व्यक्ति को पहले आत्मा को सिद्ध करना होगा—उसके बाद ही वह अतिमानस को उपलब्ध कर सकता है।

CWSA खण्ड २९, पृ. ४०५

हर हिस्से के माध्यम से परमात्मा का आनन्द

जिस समन्वयात्मक या सर्वांगीण योग पर हम विचार कर रहे हैं उसका लक्ष्य है—अपनी मानव प्रकृति के अंग-प्रत्यंग द्वारा भगवान् की सत्ता, चेतना और आनन्द से मिलन, भले ही यह मिलन हम एक-एक अंग द्वारा पृथक्-पृथक् प्राप्त करें या सबके द्वारा एक साथ, परन्तु अन्ततोगत्वा हमें सबको समन्वित और एकीभूत करना होगा जिससे सम्पूर्ण प्रकृति सत्ता की दिव्य प्रकृति में रूपान्तरित हो जाये।

CWSA खण्ड २४, पृ. ५८७

सत्य की ओर ले जाने वाला पन्थ

समस्त वास्तविकता को "मन के द्वारा समझने" से नहीं बल्कि अपनी चेतना के परिवर्तन के द्वारा ही व्यक्ति अज्ञान से ज्ञान में प्रवेश कर सकता है—उस ज्ञान में जिसके द्वारा हम वह बन जाते हैं जो हम जानते हैं। बाहरी चेतना से एक सीधी-स्पष्ट तथा घनिष्ठ आन्तरिक चेतना में पहुँच जाना; चेतना को अहंकार तथा शरीर की सीमाओं से निकाल कर विस्तृत बनाना; आन्तरिक संकल्प तथा अभीप्सा द्वारा चेतना को ऊँचा उठाना और तब तक उसे 'प्रकाश' की ओर खोलते रहना जब तक वह अपने आरोहण में मन के परे न पहुँच जाये; आत्म-दान तथा समर्पण द्वारा अतिमानसिक 'भगवान्' को नीचे उतारना, जिसके परिणाम-स्वरूप मन, प्राण तथा शरीर

का रूपान्तरण हो जाये—यह है सत्य की ओर जाने वाला सम्पूर्ण पथ[१]। हम यहाँ इसे ही 'सत्य' कहते हैं और यही हमारे योग का लक्ष्य है।
CWSA खण्ड २८, पृ. ३५५

रूपान्तर की शर्तें

स्थितप्रज्ञः का अर्थ बस यही होता है कि व्यक्ति का चिन्तनशील मन आध्यात्मिक चेतना में, 'आत्मा' की उपलब्धि में ही रमा रहे। यह चीज़ आवश्यक रूप से प्रकृति के अन्य हिस्सों का रूपान्तर नहीं करती। उच्चतर चेतना की 'शक्ति' तथा 'प्रकाश' को नीचे उतारना, चैत्य को तथा मन, प्राण और शरीर के केन्द्रों को खोलना, चैत्य तथा उच्चतर चेतना की क्रियाओं के प्रति अपने स्वभाव का ग्रहणशील उद्‍घाटन तथा अनुमोदन, और अन्त में अतिमानस के प्रति उद्‍घाटन—ये हैं रूपान्तर की शर्तें।
CWSA खण्ड ३०, पृ. ३३१

परात्पर, वैश्व तथा व्यक्तिगत भगवान्

हमारे लिए भगवान् के तीन पहलू हैं :

१. सभी चीज़ों में और सत्ताओं के अन्दर तथा पीछे वही वैश्व 'आत्मा' तथा 'स्व' है जिसके द्वारा और जिसके अन्दर इस विश्व में सभी कुछ अभिव्यक्त होता है—यद्यपि अभी वह अज्ञान में एक अभिव्यक्ति है।

२. अपने अन्दर स्थित निजी सत्ता की 'आत्मा' तथा 'स्वामी' की हमें सेवा करनी है और उनकी इच्छा को अपनी सभी गतियों में अभिव्यक्त करना सीखना है ताकि हम 'अज्ञान' से 'प्रकाश' में विकसित हो सकें।

३. भगवान् परात्पर 'सत्ता' तथा 'आत्मा' हैं, समस्त आनन्द, प्रकाश तथा भागवत ज्ञान और शक्ति हैं, और उस उच्चतम भागवत अस्तित्व तथा 'प्रकाश' की ओर हमें उठना है और उसकी वास्तविकता को अपनी चेतना

[१]. मैंने कहा है कि पुरातन काल से ही अतिमानस का विचार अस्तित्व में था। भारत में तथा अन्य स्थानों पर भी ऊपर उठ कर उस तक पहुँचने का प्रयास किया गया था, लेकिन जो भारी चूक उसमें रह गयी वह यह थी कि किसी ने भी उसे सम्पूर्ण बनाने का प्रयास नहीं किया, यानी, धरती पर उतार कर समस्त प्रकृति, यहाँ तक कि जड़-भौतिक प्रकृति तक के रूपान्तर की बात कभी नहीं सोची।

तथा अपने जीवन में अधिकाधिक उतारना है।

सामान्य रूप से हम अज्ञान में रहते हैं और भगवान् के बारे में कुछ नहीं जानते। साधारण प्रकृति की शक्तियाँ अदैवी शक्तियाँ होती हैं क्योंकि वे अहंकार, कामना तथा अचेतना का ऐसा घूँघट ओढ़ लेती हैं जो भगवान् को हमसे छिपा लेता है। उस उच्चतर तथा गभीरतर चेतना में हमें डुबकी लगानी होगी जो सचेतन रूप से भगवान् में निवास करती है, हमें निम्न प्रकृति की शक्तियों से पिण्ड छुड़ाना और भागवत शक्ति की क्रिया के प्रति उद्घाटित होना होगा जो हमारी चेतना को 'दिव्य चेतना' में रूपान्तरित कर देगी। यह है भगवान् की वह धारणा जिससे हमें आरम्भ करना है—इसके सत्य की चरितार्थता केवल चेतना के उद्घाटन तथा उसके परिवर्तन से ही आ सकती है।

CWSA खण्ड २८, पृ. ७-८

अतिमानसिक योग का पहला और अन्तिम शब्द है—समर्पण

अतिमानसिक योग का पहला शब्द है समर्पण; इसका अन्तिम शब्द भी समर्पण ही है। इस योग का आरम्भ होता है—स्वयं को शाश्वत प्रभु के हाथों में सौंप देने, भागवत चेतना के प्रति उठाये जाने के संकल्प से, पूर्णता तथा रूपान्तरण की प्यास से; अपने-आपको निःशेष भाव से दे देने में इसकी समाप्ति होती है; क्योंकि केवल तभी जब आत्म-समर्पण पूर्ण होता है कि योग की निष्पत्ति होती है, तभी अतिमानसिक प्रभु सब कुछ अपने हाथों में ले लेते हैं और सत्ता पूर्णता प्राप्त करती है, प्रकृति रूपान्तरित हो जाती है।

CWSA खण्ड १२, पृ. ३६७

चैत्य का नवजन्म

अन्तरात्मा, चैत्य सत्ता भागवत 'सत्य' के सीधे सम्पर्क में होती है, लेकिन वह मनुष्य के *मानस, प्राण तथा अन्न* (मन, प्राण तथा भौतिक) के द्वारा छिपा दी जाती है। मनुष्य योगाभ्यास करके मन में प्रकाश और विवेक पा सकता है, वह शक्ति पर प्रभुत्व पाकर प्राण में हर तरह के सुखानुभवों में रमा रह सकता है; यहाँ तक कि वह चामत्कारिक भौतिक-सिद्धियाँ भी

पा सकता है; लेकिन अगर पृष्ठभूमि में सच्ची आन्तरात्मिक शक्ति प्रकट न हो, अगर चैत्य प्रकृति सम्मुख न आये तो कहा जा सकता है कि कोई भी सच्चा कार्य वस्तुतः सम्पन्न नहीं हुआ है। इस योग में चैत्य सत्ता वह है जो मनुष्य की बाक़ी प्रकृति को सच्चे अतिमानसिक प्रकाश और अन्त में परमानन्द की ओर उद्घाटित करती है। मन अपने उच्चतर स्तरों की ओर स्वयं को खोल सकता है; वह अचञ्चल रह कर निर्वैयक्तिक में विस्तृत हो सकता है; वह किसी तरह की निश्चल मुक्ति या निर्वाण में स्वयं को आध्यात्मिक बना सकता है; लेकिन अतिमानस केवल आध्यात्मिक-भावापन्न मन में अपना पर्याप्त आधार नहीं पा सकता। अगर अन्तरतम अन्तरात्मा जाग्रत् हो जाये, अगर मानसिक, प्राणिक और भौतिक सत्ता से चैत्य चेतना का जन्म हो जाये, तब यह योग किया जा सकता है; अन्यथा (मात्र मन या किसी भी अन्य भाग द्वारा) इसे करना असम्भव है। बौद्धिक ज्ञान या मानसिक विचार या किसी प्राणिक कामना की आसक्ति के कारण अगर चैत्य के नवजन्म के लिए अस्वीकृति हो, अगर माँ का नवजात बालक बनने के लिए स्वीकृति न हो तो साधना में असफलता प्राप्त होगी।
CWSA खण्ड ३०, पृ. ३३७-३८

सच्चा आत्मोत्सर्ग

चैत्य सत्ता केवल तभी पूरी तरह से खुल सकती है जब साधक अपनी साधना से प्राणिक उद्देश्यों के घालमेल से पिण्ड छुड़ाने में सफल हो जाये और श्रीमाँ के प्रति सरल और सच्चा आत्मोत्सर्ग करने में सक्षम हो। अगर उसके अन्दर किसी भी तरह का स्वार्थी घुमाव हो या उसके उद्देश्य में सच्चाई न हो, अगर योग प्राणिक माँगों के दबाव-तले या आंशिक अथवा पूरी तरह से किसी आध्यात्मिक या किसी दूसरी महत्त्वाकांक्षा, दर्प, अहंकार, शक्ति या पद पाने या दूसरों के ऊपर प्रभाव डालने या योग की शक्ति द्वारा किसी भी तरह की प्राणिक कामना को सन्तुष्ट करने के लिए किया जाये तो चैत्य का उद्घाटन नहीं हो सकता, या होता भी है तो आंशिक या कभी-कदास और वह रह-रह कर बन्द हो जाता है, क्योंकि वह प्राणिक क्रिया-कलापों से ढँका रहता है; चैत्य अग्नि दमघोंटू प्राणिक धुएँ को हटाने में असमर्थ हो जाती है। और साथ ही, योग में अगर मन

प्रमुख भूमिका ले ले और आन्तरिक अन्तरात्मा को पृष्ठभूमि में कर दे, या, अगर भक्ति अथवा साधना की दूसरी क्रियाएँ चैत्य-रूप लेने की बजाय अधिक प्राणिक रूप ले लें तो वही समान असमर्थता उठ खड़ी होती है। चैत्य सत्ता के पूरी तरह खुलने के लिए शर्तें हैं—पवित्रता, सरल सच्चाई और बिना किसी दिखावे या माँग के अनहंकारी, अमिश्रित, आत्म-दान की क्षमता का होना।

CWSA खण्ड ३०, पृ. ३४९

भक्ति और प्रेम चैत्य गति के भाग हैं

भक्ति और प्रेम चैत्य गति के भाग हैं, एक बहुत बड़े भाग। जब तुम चैत्य परिवर्तन के लिए अभीप्सा करते हो तब तुम भक्ति तथा प्रेम के लिए अभीप्सा करते हो। परन्तु वैष्णव साधना के समान अपनी अभीप्सा को एक ही गतिविधि के द्वारा सीमित कर देना उपयोगी नहीं है; क्योंकि यह योग अधिक पर्याप्त है तथा वैष्णव साधना के सारतत्त्व को समाविष्ट करता है, किन्तु यह इससे सीमित नहीं है। कोई बात नहीं यदि तुम भौतिक वृन्दावन का भ्रमण करते हो कि नहीं, पर आवश्यक है प्रेम और भक्ति के द्वारा आन्तरिक संयोग की प्राप्ति।

CWSA खण्ड ३०, पृ. ३६२

जहाँ तक हृदय की बात है, इस योग में भगवान् के लिए ललकना, रोना-धोना, दुःखी होना या तरसना इत्यादि चीज़ें आवश्यक नहीं हैं। आवश्यक रूप से होनी चाहिये एक प्रबल अभीप्सा, हाँ, एक तीव्र ललक ज़रूर हो सकती है, तीव्र प्रेम तथा ऐक्य पाने के लिए संकल्प हो सकता है; लेकिन इसमें दुःख-शोक या बेचैनी और विक्षुब्धता की कोई ज़रूरत नहीं है। जितना अधिक तुम अपने हृदय में अचञ्चलता और शान्ति का अनुभव करोगे, परिणाम-स्वरूप, उतना ही अधिक तुम उच्चतर चेतना के नीचे उतरने के दबाव को महसूस करोगे। यह चीज़ हमेशा मन तथा हृदय में अचञ्चलता ले आती है और जैसे-जैसे यह नीचे उतरती है वैसे-वैसे एक महान् शान्ति और निश्चल-नीरवता तुम्हारे अन्दर बसने लगती हैं। शान्त हृदय के साथ मन में सच्चा मनोभाव होना चाहिये और इस तरह तुम

यह अनुभव करोगे कि तुम श्रीमाँ के बच्चे हो, तुम्हारे अन्दर उनके साथ एक होने की श्रद्धा और संकल्प उत्पन्न होंगे। इसके साथ-साथ, जो चीज़ आने वाली है उसके लिए तुम्हारे अन्दर एक अभीप्सा या नीरव प्रत्याशा भी हो सकती हैं। ऐसा लगता है कि वह भी तुम्हारे अन्दर है। इसलिए, सब कुछ ठीक है।

CWSA खण्ड ३०, पृ. ३७७

चैत्य सत्ता अन्य सभी के पीछे खड़ी है; उसकी शक्ति अन्तरात्मा की सच्ची शक्ति है। अगर वह सामने आ जाये तो वह बाक़ी सब पर छा जाती है; मन, प्राण तथा भौतिक चेतना उसके संस्कार ले सकते तथा उसके प्रभाव के द्वारा रूपान्तरित किये जा सकते हैं। जब प्रकृति अच्छी तरह विकसित हो जाती है तब मन में एक चैत्य, प्राण में एक चैत्य तथा शरीर में एक चैत्य प्रकट हो जाता है। जब किसी में यह प्रबल रूप से उपस्थित होता है, तब हम कह सकते हैं कि उस व्यक्ति में निश्चित रूप से अन्तरात्मा का निवास है। लेकिन कइयों में इस तत्त्व की इतनी कमी होती है कि यह विश्वास करने के लिए कि इनमें आत्मा है, हमें श्रद्धा का सहारा लेना पड़ता है। चैत्य सत्ता का केन्द्र भावनात्मक सत्ता के केन्द्र के पीछे होता है; भावनात्मक सत्ता ही ऊर्जस्वी रूप से चैत्य के सबसे निकट होती है और अधिकतम मनुष्यों में भावनात्मक केन्द्र के द्वारा ही चैत्य तक सबसे आसानी से पहुँचा जा सकता है और चैत्यभावापन्न भावना के द्वारा उसे सबसे अधिक आसानी से अभिव्यक्त किया जा सकता है। इसीलिए कई लोग एक को दूसरा समझ लेने की भूल कर बैठते हैं; लेकिन दोनों में ज़मीन-आसमान का फ़र्क होता है। सामान्यतः भावनाएँ अपनी प्रकृति में प्राणिक होती हैं और चैत्य प्रकृति का हिस्सा नहीं होतीं ।

CWSA खण्ड २८, पृ. १८८-८९

'पुरोधा'

दैनन्दिनी

मार्च

१. जो कुछ करना हो उसे ध्यान देकर करना, हर प्रकार की प्रगति का आधार है।

२. कोई महत्त्वाकांक्षा न रखो, और सबसे बढ़ कर यह कि किसी चीज़ का दिखावा न करो, हर क्षण तुम अधिक-से-अधिक जो हो सकते हो वह बनो।

३. सच्चाई से काम में लग जाओ, देर-सवेर बाधाएँ दूर हो जायेंगी।

४. उदाहरण से बड़ी कोई और सीख नहीं है। दूसरों से कहना : "अहंकारी मत बनो," कुछ अर्थ नहीं रखता, पर यदि कोई सब प्रकार के अहं से मुक्त हो तो वह औरों के लिए शानदार उदाहरण बन जाता है।

५. यदि कोई सचमुच अच्छे-से-अच्छा करने को उत्सुक है तो वह काम करते-करते ही प्रगति करता जाता है और अधिक-से-अधिक अच्छा करना सीखता है।

६. आलोचना कभी-कदास ही उपयोगी होती है, वह सहायता करने के बदले निरुत्साहित ही अधिक करती है। हर शुभ संकल्प को बढ़ावा देना चाहिये, क्योंकि ऐसी कोई प्रगति नहीं जो धैर्य और सहनशीलता से साधित न हो सके।

७. मूल बात तो यह है कि व्यक्ति में यह विश्वास होना चाहिये कि चाहे जितना उपलब्ध हो चुका हो, फिर भी उसके अन्दर इच्छा हो तो वह हमेशा ज़्यादा अच्छा कर सकता है।

८. बच्चों को सभी कुछ सीखना है। यही उनका मुख्य काम होना चाहिये ताकि वे अपने-आपको उपयोगी और सृजनशील जीवन के लिए तैयार करें।

९. सभी को यह सिखाना चाहिये कि वे जो कुछ करें अच्छी तरह करने के आनन्द से करें, चाहे वह बौद्धिक काम हो या कलात्मक या शारीरिक, और विशेषकर यह सिखाना चाहिये कि काम कैसा भी

क्यों न हो, यदि उसे यत्न और कुशलता से किया जाये तो उसकी अपनी गरिमा है।

१०. एक अच्छा शिक्षक बनने के लिए गुरु की सूक्ष्म दृष्टि और उनका ज्ञान होना चाहिये और साथ ही सब कसौटियों के लिए धैर्य।

११. तुम जैसे स्पन्दन छोड़ते हो वैसे ही स्पन्दनों से तुम्हारा सम्पर्क हो जाता है। यदि तुम बुरा और नाशक स्पन्दन छोड़ो तो यह बिलकुल स्वाभाविक होगा कि तुम वैसे ही स्पन्दन को अपनी ओर आकर्षित करो।

१२. हम भगवान् के सच्चे सेवक बनना चाहते हैं।

१३. सच्ची बुद्धिमानी यह है कि जो कुछ करो ख़ुशी से करो और हर एक को प्रगति का साधन बना लो।

१४. यदि तुम सचमुच शान्ति और आनन्द चाहते हो तो तुम्हारी सतत लगन होनी चाहिये : "मुझे ऐसी कौन-सी प्रगति करनी चाहिये ताकि मैं भगवान् को जान सकूँ, उनकी सेवा कर सकूँ?"

१५. कभी उत्तेजित, उद्विग्न या विक्षुब्ध मत होओ। सब अवस्थाओं में पूर्ण रूप से शान्त बने रहो। फिर भी सदा सजग रहो ताकि जो उन्नति तुम्हें करनी है उसे तुम जान सको तथा बिना समय नष्ट किये उसे प्राप्त कर सको।

१६. किसी के व्यवहार के प्रति शिकायत मत करो, जब तक तुम्हारे अन्दर उसके स्वभाव की उस चीज़ को बदलने की शक्ति ही न हो जो उसे वैसा करने को प्रेरित करती है; और अगर तुम्हारे पास वह शक्ति है तो शिकायत करने के स्थान पर उसे बदल दो।

१७. अपने जीवन के प्रयोजन और लक्ष्य को कभी मत भूलो।

१८. यह भली-भाँति जानी हुई बात है कि अगर तुम तेज़ी से प्रगति करना चाहते हो तो तुम्हें कठिनाइयों से डरना न चाहिये; इसके विपरीत, जब कभी अवसर आये तब कठिन चीज़ को चुनने से ही संकल्प-शक्ति बढ़ती है और स्नायुओं में बल आता है।

१९. हमारे लिए पार्थिव जीवन केवल एक रास्ता या साधन नहीं है, उसे रूपान्तर के द्वारा एक लक्ष्य, एक उपलब्धि बनना चाहिये।

२०. धरती का जीवन अच्छे-से-अच्छे रूप में प्रगति के लिए क्षेत्र है, और

मनुष्य को उससे अधिक-से-अधिक लाभ उठाने की कोशिश करनी चाहिये।

२१. काम भी एक तपस्या है। इसमें यह ज़रूरी है कि अपनी पसन्द न हो, जो भी करना हो उसे रस लेकर किया जाये।

२२. जो व्यक्ति अपने-आपको पूर्ण बनाना चाहता है उसके लिए छोटे या बड़े, महत्त्वपूर्ण और महत्त्वहीन काम के जैसी कोई चीज़ नहीं होती। जो प्रगति और आत्म-प्रभुत्व के लिए अभीप्सा करता है उसके लिए सभी काम एक-से उपयोगी हैं।

२३. हम जितना ही अधिक अपने पथ पर आगे बढ़ते हैं, भागवत उपस्थिति की ज़रूरत हमारे लिए उतनी ही अधिक आवश्यक और अनिवार्य हो जाती है।

२४. जब मनुष्य उस मिथ्यात्व से विरक्त हो जायेंगे जिसमें वे रह रहे हैं तब संसार सत्य के राज्य के लिए तैयार होगा।

२५. तुम जो कुछ हो और जो कुछ करते हो वह सब भगवान् को दे दो, तुम्हें शान्ति मिल जायेगी।

२६. हमें एकमात्र भगवत्कृपा पर निर्भर रहना और सभी परिस्थितियों में उसी को सहायता के लिए पुकारना सीखना होगा; तब वह लगातार चमत्कार करके दिखायेगी।

२७. हमारा सारा जीवन ही भगवान् को निवेदित प्रार्थना होना चाहिये।

२८. मैं हमेशा तुम्हारे हृदय में विराजमान हूँ, सचेतन रूप से तुम्हारे अन्दर रहती हूँ।

अपने हृदय को खोलो और तुम मुझे वहाँ पहले से ही मौजूद पाओगे।

२९. वे सभी आत्माएँ जो अभीप्सा करती हैं हमारी सीधी देख-रेख में हैं। हम उन सबके साथ हैं जो दिव्य जीवन के लिए अपनी अभीप्सा में सच्चे हैं।

३०. जब हम कटु हो जाते हैं तो अपना भागवत सम्पर्क खो बैठते हैं और बहुत 'कटु रूप में' मानव बन जाते हैं।

३१. भगवान् हर चीज़ में हैं, परन्तु हम उनके बारे में सचेतन नहीं हैं। यही वह विशाल प्रगति है जो मनुष्य को करनी चाहिये।

एक शिष्या के साथ श्रीमाँ का पत्र-व्यवहार

(एक शिष्या के नाम पत्र जो १९४४ में आठ वर्ष की उम्र में आश्रम आयी थीं और ग्यारह वर्ष की उम्र में यहाँ के शारीरिक शिक्षण-विभाग में कप्तान बन गयीं। उन्होंने तीस वर्षों तक इस विभाग का कार्य किया।)

प्यारी माँ,

क्या आप क्रीड़ांगण के सामूहिक ध्यान के समय हमारे साथ होती हैं?

निश्चय ही, मैं वहाँ हमेशा होती हूँ।

उससे लाभ पाने के लिए हमें किस चीज़ पर ध्यान करना चाहिये? और किस तरह?

तरीक़ा हमेशा वह-का-वही है : अपने अन्दर की उन सभी ऊर्जाओं को इकट्ठा करो जो सामान्यतः बाहर बिखरी रहती हैं; सतही हलचल के नीचे, अपनी चेतना को अन्दर एकाग्र करो, जहाँ तक हो सके अपने हृदय तथा सिर में एक पूर्ण शान्ति प्रतिष्ठित करो; फिर अगर तुम्हारे अन्दर कोई अभीप्सा हो तो उसे सूत्रबद्ध करो और ऊपर से भागवत प्रकाश को ग्रहण करने के लिए स्वयं को खोलो।
१ जुलाई १९६०

प्यारी माँ,

मेरे लिए कुछ ऐसी बात लिखिये जिसे मैं सारे साल याद रख सकूँ।

हमारा लक्ष्य है अपनी सत्ता की पूर्णता को चरितार्थ करना और मानव-पशु को भागवत मनुष्य में बदल देना।

अपने आशीर्वाद सहित।

५ जुलाई १९६०

प्यारी माँ,

अगर किसी अन्तरात्मा ने एक जन्म में लड़के का शरीर धारण किया हो तो क्या वह भावी जीवनों में हमेशा लड़का ही बनी रहेगी या वह लड़की के रूप में जन्म ले सकती है?

मत और सम्प्रदाय के अनुसार सिद्धान्त बदलते रहते हैं और प्रत्येक शिक्षा अपने दावों के समर्थन के लिए अच्छे-से-अच्छे कारण दे सकती है।

निश्चय ही इन सभी कथनों में सत्य का तत्त्व है और न केवल ये सभी मामले सम्भव हैं, बल्कि पार्थिव इतिहास के क्रम में ये ज़रूर घटित हुए होंगे और अब भी हो रहे हैं।

इस विषय पर मैं निश्चिति के साथ जो कह सकती हूँ वह मेरी अपनी अनुभूति है।

मेरी अनुभूति के अनुसार, अन्तरात्मा भागवत है, परम प्रभु का शाश्वत अंश है, अतः उसे किसी भी सीमा या नियम में—सिवाय उसके अपने—बाँधा नहीं जा सकता। ये अन्तरात्माएँ धरती पर 'प्रभु' का 'कार्य' करने के लिए उनसे प्रकट होती हैं और प्रत्येक धरती पर एक विशेष प्रयोजन के लिए, कार्य-विशेष के लिए तथा लक्ष्य-विशेष के लिए आती है; प्रत्येक का अपना विधान होता है जो उसी पर लागू होता है और उसे व्यापक नियम नहीं बनाया जा सकता।

अतः, सम्भवन की शाश्वतता में, हर कल्पनीय और अकल्पनीय सम्भव मामले को निश्चित रूप से घटित होना चाहिये।

१४ जुलाई १९६०

मधुर माँ,

मेरे भाई ने अन्य कुछ लड़कों के साथ रात को स्पोर्ट्स ग्राउण्ड में काम करना शुरू किया है। मुझे पता नहीं कि दिन-भर की पढ़ाई और तीसरे पहर की कसरत के बाद उसके लिए ऐसा करना ठीक है क्या। वह दोपहर के भोजन के बाद आराम भी नहीं लेता। वह कहता है कि उसे थकान नहीं महसूस होती। कल वह स्पोर्ट्स ग्राउण्ड से आधी रात के बाद लौटा, लेकिन वह कहता है कि आगे से वह

जल्दी लौटा करेगा।

माँ, यदि आपको लगता है कि यह ठीक है तो मैं उसे यह जारी रखने दूँ।

अगर वह ख़ुशी से करता है तो उसकी उम्र में इससे कोई हर्ज़ नहीं है, बशर्ते कि यह लम्बे समय तक न चले। बहरहाल, जैसे ही उसे थकान लगे उसे विश्राम करना चाहिये।

आशीर्वाद।

२४ मई १९६३

मेरी प्यारी बच्ची,

मैं जानती हूँ कि रातोरात अपनी प्रकृति को बदलना असम्भव है, लेकिन तुरन्त जो तुम समझ सकती और मान सकती हो वह यह है कि अपना आपा खोना और अशान्त होना बहुत बड़ी कमज़ोरी का लक्षण है। और, जैसा कि मैंने तुमसे कहा है, जिस क्षण तुम इस दुर्बलता को—जो तुम्हारे योग्य नहीं है—जीतने का निश्चय कर लोगी, मेरी शक्ति तुम्हारे साथ होगी। अतः, मैं तुमसे कहती हूँ कि अभी से इस शक्ति का उपयोग करो जो मैं तुम्हें तुम्हारी प्रतिक्रियाओं को वश में करने के लिए दे रही हूँ और तब तक शान्त रहो जब तक तुम्हारा ग़ुस्सा उतर न जाये। यह पहला अनिवार्य क़दम है। बाद में क्रमशः मैं तुम्हारी मदद करूँगी कि तुम यह समझ सको कि तुम्हारा ग़ुस्सा अनुचित और निराधार था।

अपने समस्त प्रेम के साथ मैं तुमसे यह कहती हूँ कि इस महान् प्रगति को प्राप्त करने के लिए कृपया आवश्यक प्रयास करो; यह रूपान्तर का दरवाज़ा खोल देगी।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

अगस्त १९६९

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १७, पृ.४६५-६८

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

नींद और स्वप्न
(२)

कुछ अन्य प्रकार के स्वप्न भी होते हैं जिनके बारे में हम जानने की कोशिश करेंगे। दो घटनाएँ ऐसी हैं जिनमें दो व्यक्तियों को पुरस्कार मिले थे और उन्हें स्वप्न में उनकी पूर्वसूचना मिल गयी। उनमें से एक रसायन का प्राध्यापक था। वह कुछ समस्याएँ सुलझा रहा था। एक दिन उसने स्वप्न में कुछ ऐसी चीज़ें देखीं जिनसे उसकी समस्याएँ हल हो गयीं। निद्रा और स्वप्न बेकार चीज़ें नहीं हैं। तुम थक कर सो जाते हो और फिर सवेरे ताज़ा होकर उठ बैठते हो और समस्या हल हो जाती है। और इससे भी अधिक चीज़ें होती हैं जिन्हें लाभदायक ढंग से साधा जा सकता है, जो केवल आध्यात्मिक ही नहीं भौतिक जीवन में भी उपयोगी होती हैं।

कुछ ऐसे स्वप्न होते हैं जिन पर हमारा अधिकार नहीं होता, लेकिन वे अंशतः प्रतीकात्मक होते हैं। मुझे याद है, एक बार मेरे एक बड़े अच्छे मित्र ने एक स्वप्न के बारे में बताया जिसे मैंने माताजी के आगे दोहराया। समुद्र के किनारे उसका एक बड़ा और सुन्दर मकान था, उसके मकान के सामने किसी फ़क़ीर की क़ब्र थी। उसकी पुत्रवधू हाल में गर्भवती हुई थी। उसने स्वप्न देखा जिसमें वह फ़क़ीर उसके मकान में घुसा। जब मैंने यह स्वप्न माताजी को सुनाया तो उन्होंने कहा कि यह स्वप्न सच्चा था। उन्होंने बतलाया कि उस फ़क़ीर ने उस महिला के गर्भ में प्रवेश किया था और उसका जो बच्चा पैदा होगा उसमें स्वभावतः आध्यात्मिक वृत्ति होगी क्योंकि वह अपने साथ अपने पिछले जन्म की फ़क़ीरी की पृष्ठभूमि लेकर आयेगा। इस तरह के बहुत-से स्वप्न सुप्रसिद्ध हैं, जैसे बुद्ध की माँ का स्वप्न। हम इसके विस्तार में नहीं जायेंगे परन्तु इतना तो स्पष्ट है ही कि स्वप्न चेतना की एक ऐसी अवस्था है जिसकी हमें उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। सपनों से शिक्षा मिल सकती है।

पिछली बार मैंने तुम्हें बताया था, मलेशिया में एक जाति है, इसके बच्चे जब सवेरे सोकर उठते हैं तो आकर अपने बाबा के साथ बैठ जाते

हैं और बाबा छूटते ही पूछते हैं, 'पिछली रात तुमने क्या देखा।' बच्चा कह सकता है, 'मैंने एक शेर देखा, तब मैं बहुत डर गया।' बाबा कहते हैं, 'डरा मत करो। अगली बार शेर देखो तो डरना मत, बहादुरी के साथ उसका सामना करना।' कुछ दिनों के बाद बच्चा कह सकता है कि उसने एक शेर या हाथी देखा। 'और तुमने क्या किया?' 'मैंने उसका सामना किया और फिर वह सिकुड़ता चला गया, सिकुड़ता चला गया और इसी तरह ग़ायब हो गया।' माताजी ने कहा है कि ऐसे स्वप्न दिखायी दें तो डरो मत। तब तुम देखोगे कि वे सिकुड़, सिकुड़ कर लुप्त हो जायेंगे। इस तरह तुम सपनों के द्वारा अपने चरित्र को पहचान कर साहस, धैर्य और अन्य सद्‌गुण पैदा कर सकते हो। स्वप्न तुम्हें अपने चरित्र को पहचानने, अपनी क्षमताओं को जानने में सहायता देते हैं।

माताजी ने एक और मज़ेदार स्वप्न सुनाया था। उन्होंने कहा, एक लेखक कुछ लिखने की कोशिश कर रहा था। जब वह आधी दूर पहुँचा तो उसे लगा कि गाड़ी ठीक नहीं चल रही और विचार ठीक क्रम में नहीं आ रहे। वह जाकर चुपके से सो गया। उसने स्वप्न देखा कि उस कमरे में एक आराम-कुरसी है और वह चीज़ों को व्यवस्थित कर रहा है, परन्तु उसमें सफलता नहीं मिल रही। वह चुपचाप बैठ गया। उसे ख़याल आया कि आराम-कुरसी को बीच में रख दे और बाक़ी चीज़ें उसके चारों ओर सजा दे। तो जब वह सोकर उठा तो ख़याल आया कि उसे पहले अपने मुख्य विचार को केन्द्र में रखना चाहिये और फिर बाक़ी विचारों को उसके इर्द-गिर्द।

तो बात ऐसी है। तुम एक समस्या को लिये सो जाते हो, लेकिन मन सक्रिय बना रहता है। शरीर सो जाता है पर मन और प्राण सक्रिय रहते हैं और चैत्य भी सक्रिय रहता है। अगर तुम अपनी नींद पर अधिकार करना जानो तो उससे बहुत लाभ उठा सकते हो। माताजी ने तो यहाँ तक कहा है कि स्वप्नों पर भी अधिकार किया जा सकता है, तुम स्वप्न के अनुक्रम पर भी अधिकार कर सकते हो और अगली रात पिछले स्वप्न से आगे बढ़ सकते हो। इस आदत को विकसित करना चाहिये। माताजी ने यह भी बताया है कि स्वप्नों को कैसे याद रखा जा सकता है।

इस विषय पर आने से पहले मैं दुःस्वप्नों के विषय पर आता हूँ।

दुःस्वप्न विशेष रूप से बच्चों के लिए एक समस्या होते हैं। मुझे एक व्यक्ति की याद आती है जो मेरा अच्छा मित्र और कवि था। उसने एक पत्र में श्रीअरविन्द को लिखा कि वह अपनी नींद में शरीर से बाहर चला गया और किसी ऐसे जगत् में चला गया जहाँ की सत्ताओं ने उसे पकड़ कर पीटा। वहाँ से लौटने पर उसने अनुभव किया कि यद्यपि उसका शरीर लेटा हुआ था परन्तु उसे बहुत थकान लग रही थी और सारे शरीर में दर्द हो रहा था। श्रीअरविन्द ने उसे बतलाया कि वह प्राणमय जगत् में चला गया था जहाँ प्राणमय सत्ताएँ होती हैं। ये सत्ताएँ शरारत न कर सकें इसके लिए हमें माताजी और श्रीअरविन्द की रक्षा पानी सीखनी चाहिये।

दुःस्वप्नों के दो पक्ष होते हैं। इनसे बचने का एक उपाय यह है कि इन लोकों में जाया ही न जाये, लेकिन तब हम कभी सीख न पायेंगे, कभी भी समस्याओं का सामना करना या उन पर विजय पाना न सीख सकेंगे। दूसरा उपाय यह है कि प्राणमय जगत् में जाओ तो ज़रूर पर प्राणमय सत्ताओं के प्रभाव में न आओ बल्कि उन पर अपना प्रभाव डालो और उन्हें जीत लो। अधिकतर दुःस्वप्न सूक्ष्म-भौतिक और प्राणमय जगतों से सम्बन्ध रखते हैं, उनसे परे नहीं। मन के परे दुःस्वप्न नहीं आया करते। मन के परे आनन्दधाम हुआ करते हैं। सचमुच जब तुम मन के परे चले जाते हो तो तुम्हारी नींद ताज़ा करने वाली होती है। जब तक तुम प्राण और मन में रहते हो तब तक नींद ताज़गी नहीं लाती।

(क्रमशः)

—नवजातजी

कल रात मुझे बिलकुल नींद नहीं आयी। सवेरे जब मैं उठा तो थका हुआ था। कौन-सी चीज़ मुझे सोने से रोकती है?

तुम्हारे अन्दर की बेचैनी तुम्हें अन्दर और बाहर निश्चल रहने से रोकती है। अच्छी तरह सोने के लिए प्राण और शरीर तथा मन को भी अपने-आपको शिथिल करना और शान्त रहना सीखना चाहिये।

जुलाई १९३३

श्रीअरविन्द

नन्हा महर्षि

महाभारत में कहा गया है कि कलियुग में जब धरती से भक्ति का विलोप होने लगेगा, वह दक्षिण भारत में अन्त तक बनी रहेगी।

दक्षिण के ही सन्त तिरु ज्ञान सम्बन्धर के बाल-जीवन की कथा है यह जिनके भक्ति-गीत आज भी घर-घर गूँजते हैं।

दक्षिण भारत के एक गाँव में परम शिवभक्त निस्सन्तान दम्पति रहा करते थे। रात-दिन उनकी कुटिया से शिवस्तुति की लहरें उठा करतीं, वह छोटी-सी कुटिया शिवजी का पवित्र धाम-सा प्रतीत होती थी। पतिपरायणा साध्वी पत्नी को पाकर शिवभक्त विरुदायर का जीवन कृतकृत्य हो उठा था, उधर पत्नी भगवती भी शिव के अनन्य पुजारी का साथ पाकर धन्य हो उठी थी। गाँव के दूसरे लोग कभी नीची आवाज़ में आपस में कानाफूसी करते कि निस्सन्तान इस दम्पति का वंश यहीं समाप्त हो जायेगा, लेकिन उस सरल दम्पति के जीवन में न कोई दुःख था न अभाव, शिवमय वे कण-कण में अपने ईश्वर की अनुकम्पा के ही दर्शन करते। और जिसने अपने-आपको पूरी तरह से प्रभु के चरणों में न्योछावर कर दिया हो उसके जीवन-खेवैया क्या उसे मँझधार में छोड़ देंगे! प्रभु को तो उस दम्पति की झोली में अपना एक परम भक्त उपहार-स्वरूप डालना था, अतः समय आने पर भगवती ने एक स्वस्थ, सुन्दर बालक को जन्म दिया। जन्म के समय ही बच्चे के उस अलौकिक मुख के दर्शन के लिए गाँव का गाँव उमड़ पड़ा। सचमुच दर्शनीय था वह नन्हा शिशु। भक्त-दम्पति तो उसे पाकर निहाल हो गये, बालक के जन्म के साथ-साथ उन्हें यह अनुभव हो गया कि यह कोई विशेष शिशु है, लेकिन यह सचमुच भागवत बालक है इसे उन्होंने तीन वर्ष बाद जाना।

बाल-सुलभ शरारतों के साथ-साथ वह नन्हा शिशु पनपने लगा। बचपन से ही घर के भक्तिमय वातावरण में पगे उस बालक में भक्ति हिलोरें लेती थी, शिवलिंग के सामने हाथ जोड़े निर्निमेष बैठा रहता और अपनी सरल शरारतों से न केवल माता-पिता बल्कि गाँव के सभी लोगों का मन मोह लेता। एक दिन रोज़ की तरह तालाब में स्नान करने के लिए विरुदायर सवेरे-सवेरे घर से निकल पड़े। कुछ क़दम चलने के बाद ही उन्हें पायल

की झनकार सुनायी दी, पीछे मुड़ कर देखा कि चार बरस का उनका बेटा ठुमक-ठुमक कर चला आ रहा है। "अरे लाल, सवेरे-सवेरे मेरे साथ न आओ, मैं अभी स्नान-ध्यान करके आया, तब तक तुम नहा-धोकर तैयार रहना, हम मिल कर शिवजी का दुग्धाभिषेक करेंगे।" पिता ने पुत्र को समझाया, लेकिन जो हठ न करे वह बालक नहीं। बच्चे ने ज़िद पकड़ ली, तुतलाती आवाज़ में अपना फ़ैसला सुना दिया—"बाबा, आज हम भी आपके साथ तालाब के पासवाले मन्दिर में जाकर दर्शन करेंगे।"

माँ ने बहुतेरा समझाया, पिता ने आकर मन्दिर में ले जाने का आश्वासन दिया, लेकिन वह भी अपनी बात से टस-से-मस न हुआ। माँ ने अन्तिम पासा फेंकते हुए कहा—"देख लाल, अभी तू जूठे मुँह है, न तूने सवेरे उठ कर आँख धोयी है न मुँह। भगवान् के पास इस तरह बासी कपड़ों में नहीं जाते।"

प्रत्युत्पन्नमति बालक ने तुरन्त प्रत्युत्तर में कहा—"क्या कहती है माँ, रोज़ सवेरे-सवेरे तो तू मुझे सबसे पहले पूजाघर भेजती है शिवजी को प्रणाम करने, तब क्या मैं जूठे मुँह और बासी कपड़े में नहीं होता, जैसे हमारे घर के शिवजी वैसे तालाब के पासवाले मन्दिर के शिवजी। जाने दे माँ, मैं बाबा के साथ ही वापस आ जाऊँगा।"

माता-पिता उस नन्हें से बालक के इस तर्क के सामने निरुत्तर हो गये और वह हँसी-ख़ुशी पिता के कन्धों पर जा बैठा। रास्ते-भर अपने तुतलाते स्वर में बातें करते-करते उस छोटे दार्शनिक ने मोह लिया पिता को। उन्हें ऐसा लगा मानों आज वे पल-भर में तालाब तक पहुँच गये। अभी तक गाँव का और कोई व्यक्ति स्नान करने नहीं आया था। पिता ने बालक को नीचे उतार कर मन्दिर की सीढ़ियों पर बिठा कर कहा—"बेटे, मैं अभी स्नान करके आया, तब तक तू यहीं बैठे रहना।"

बालक ने हामी भरी और पिता निश्चिन्त हो तालाब में नहाने उतर गये। इधर दो पल स्थिर बैठने के बाद बालक को लगा मानों वह युगों से उन सीढ़ियों पर बैठा है। पिता का दृष्टि से ओझल होना था कि बालोचित भय ने उसे आ घेरा। "बाबा, बाबा, माँ, माँ" का करुण क्रन्दन तालाब में स्नान कर रहे पिता के कानों तक तो न पहुँचा, लेकिन मन्दिर में विराजमान शिव-पार्वती के हृदय तक तुरन्त पहुँच गया। पृथ्वीवासियों का

आर्तनाद पार्वतीजी को वैसे ही विह्वल कर बैठता है और यह तो चार वर्ष का वह नन्हा, प्यारा-सा शिशु था जिसे प्रभु ने धरा पर कार्य-विशेष के लिए भेजा था।

अगले ही क्षण शिव-पार्वती बालक के सामने दूध से भरा कटोरा लिये खड़े थे। उस सुबकते बालक का क्रन्दन तो जहाँ-का-तहाँ ठिठक गया, उसकी आँखें चमक उठीं, नन्हें-नन्हें हाथ गोदी में आने के लिए मचल उठे। जगन्माता पार्वती ने उस शिशु को अंक में भर लिया, बालक को संसार का समस्त सुख मिल गया। दूध का कटोरा होठों से लगाया तो उसकी अन्तिम बूँद समाप्त कर ही उसने तृप्ति की साँस ली।

सीढ़ियों पर किसी के चढ़ने की आहट पाते ही शिव-पार्वती बालक को आशीर्वाद दे मन्दिर में लौट गये, कटोरा अन्तर्धान हो गया और बालक अमृत-तुल्य दूध की अन्तिम बूँद का रसास्वादन लेता हुआ मन्दिर की दिशा में टकटकी बाँधे खड़ा रहा। पिता बालक के होठों पर दूध की बूँद देख ठिठक गये, अनायास उनकी त्योरियाँ चढ़ गयीं, आस-पास किसी को न देख ज़रा क्रोध में आकर बोले—"वत्स, किसने तुझे दूध दिया, यहाँ तो कोई नहीं दीख रहा, बता जल्दी, नहीं तो...?" किसी भयभीत आशंका ने पिता को जकड़ लिया।

स्वाभाविक मुस्कान के साथ शिशु अपनी तोतली आवाज़ में बोल उठा—"बाबा, तुम तो मुझे भूखा-प्यासा छोड़ कर न जाने कहाँ खो गये, भूख और डर के मारे मैं रोने लगा तो तुमने सुना ही नहीं, हाँ, मन्दिर के भगवान् ने मेरा रोना सुन लिया, पास ही जो खड़ा था मैं इनके। अभी-अभी शिवजी और पार्वतीजी मुझे सुन्दर-से कटोरे में दूध पिला कर गये। बाबा, ऐसा मीठा दूध तो हमारी श्यामा गाय भी नहीं देती।"

लेकिन बाबा के गले से यह बात न उतरी, आख़िर वे मनुष्य थे। बच्चा ज़रूर उनसे कुछ छिपा रहा है, यह सोच उन्होंने फिर उसे घुड़का —"सच सच बता बेटा, तुझे दूध किसने दिया, ऐरे-ग़ैरे राह चलते लोगों से तूने क्यों दूध लिया भला?" पिता को अपने ऊपर क्रोध आ रहा था कि न जाने अकेले देख किसी ने कुछ मिला कर तो इसे दूध नहीं पिला दिया।

लेकिन बालक की समझ के बाहर था पिता का वह भय और ग़ुस्सा। हाथ खींच कर मन्दिर के अन्दर उन्हें ले गया, शिवलिंग के सामने उँगली

उठा कर बोला—"मेरे बाबा को बता दो कि मय्या पार्वती के साथ तुम ही आये थे मेरी भूख मिटाने।"

पिता विरुदायर अपने बेटे के साथ मन्दिर के गर्भ-गृह में अवाक् खड़े थे। उनके अनेकानेक जीवनों की सञ्चित तपस्या का फल इसी क्षण उन्हें मिलने वाला था, क्या वे इस तथ्य से अवगत थे? अचानक वह छोटा-सा मन्दिर रूपान्तरित हो उठा, अलौकिक प्रकाश से जगमगा उठा, और प्रकट हो गये शिव-पार्वती विरुदायर के सम्मुख। और कहाँ चला गया उनका वह छोटा-सा बेटा? वह बाल-गोपाल की साक्षात् मूर्ति तो पार्वतीजी की गोद में खेल रहा था। आकाशवाणी नहीं, साक्षात् देववाणी सुनी विरुदायर ने—"हे ब्राह्मण! तुम्हारा यह मानव पुत्र सचमुच भागवत बालक है जिसे हमने धरती पर विशेष कार्य के लिए भेजा है। इस कलिकाल में देववाणी लुप्त हो गयी है। यह बालक उसे यहाँ पुनरुज्जीवित करेगा, घर-घर में, जन-जन में हमारे गीत गा-गा कर भक्ति-सागर लहरायेगा ताकि मनुष्यों का चित्त निर्मल हो उठे और वे सुकर्म करें। आज इसने अमृत-कटोरे से ज्ञान का दूध पी लिया, अब इसका धरती पर कार्य आरम्भ हो जायेगा। यह सारे दक्षिण भारत में तिरु ज्ञान सम्बन्धर के नाम से प्रसिद्ध होगा। तुम और तुम्हारी पत्नी की तपस्या का यह फल है कि तुमने इस सन्त को पाया।" विरुदायर का सारा शरीर कृतज्ञता और प्रेम के आँसुओं की झड़ी बन गया। धीरे-धीरे वह प्रकाश मन्द पड़ गया, लेकिन विरुदायर को लगा मानों सिमट कर वह सारा-का-सारा उसके अन्तस्तल में प्रवेश कर गया। बाहरी रूप से सब कुछ पहले जैसा सामान्य हो गया, वह सन्त छोटे बालक के रूप में अपनी नन्हीं उँगलियों से पिता का हाथ थाम कर तुतलाते स्वर में बोल उठा—"बाबा, घर चलो, माँ कब से हमारी प्रतीक्षा कर रही है।"

बाबा तो उसी क्षण अपना सारा जीवन अपने नन्हें महर्षि के हाथों में न्योछावर कर चुके थे, अब तो उन्हें बस उसी के पथ-प्रदर्शन में चलना था। उँगली खींच कर वह अपने बाबा को घर तक ले आया जहाँ उसकी मय्या भी भक्ति और भावावेश के उसी सागर में पैठी हुई थीं। ईश्वर के राज्य में स्थान और काल अपनी सीमा खो बैठते हैं, मन्दिर का सारा दृश्य और वार्तालाप एक साथ ब्राह्मणी की कुटिया में भी उतर आया था।

उस दिन के बाद से माता-पिता का वह प्यारा शिशु उनके हृदय में

ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठित हो गया जिसने सारे दक्षिण भारत में शिव-पार्वती के स्तुति-गान गा-गा कर भक्ति-युग को फिर से स्थापित कर दिया।

—वन्दना

सिद्धि

१९वीं शताब्दी के भारतीय सन्तों, सुधारकों और चिन्तकों में स्वामी रामतीर्थ की गिनती की जाती है। उन्हें 'बादशाह राम' के नाम से उनके समय की जनता पुकारती थी। देशाटन करते हुए एक बार वे ऋषिकेश पहुँचे। उन दिनों मुनि की रेती से स्वर्गाश्रम आने-जाने के लिए नौकाओं की व्यवस्था थी। उन नौकाओं के मल्लाह उन दिनों गंगा पार करने का एक ओर की उतरायी का एक पैसा वसूल करते थे। एक पैसा जाने का और एक ही पैसा लौटने का। मुनि की रेती पर गंगा के किनारे स्वामी रामतीर्थ नौका की प्रतीक्षा कर रहे थे कि एक तथाकथित पहुँचे हुए साधु उनके पास आये और बोले—"बादशाह राम! हमने तो सुना था कि तुम बड़े सिद्ध हो गये हो। तुम क्या अपनी सिद्धि के बल पर गंगा भी पार नहीं कर सकते? मुझे तो कोई जानता तक नहीं। परन्तु मुझे तो इतनी सिद्धि मिल गयी है कि मैं गंगा लाँघ सकता हूँ।"

स्वामी रामतीर्थ मुस्कुरा उठे! बोले—"महाराज, यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप अपनी सिद्धियों के बल पर गंगा आर-पार लाँघ सकते हैं। क्या आप बतायेंगे कि इतनी सिद्धि प्राप्त करने के लिए आपने कितने वर्षों तक निरन्तर साधना की है?" उन सिद्ध साधु ने तुरन्त उत्तर दिया—"लगातार तीस वर्षों की साधना के बाद मुझे यह सिद्धि मिली है। कहो तो गंगा को लाँघ कर दिखा दूँ।" स्वामी रामतीर्थ पुनः मुस्कुराये; बोले—"तुम्हारी तीस वर्षों की साधना का इतना छोटा-सा फल मिला? तुमने गंगा पार करने का एक पैसा जाने का और एक पैसा लौटने का, कुल दो पैसे बचाये। यही साधना तुम किसी ऊँचे लक्ष्य की प्राप्ति के लिए करते तो कहीं कम समय में तुम्हें कहीं बड़ी उपलब्धि हो जाती।"

प्रस्तुति : नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

अगर तुम पृथ्वी पर शान्ति चाहते हो
तो पहले अपने हृदय में शान्ति स्थापित करो।
अगर तुम जगत् में एकता चाहते हो
तो पहले अपनी ही सत्ता के विभिन्न भागों को एक करो।

श्रीमाँ

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,

जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)

www.aurosocietyrajasthan.org

Statement About Ownership And Other Particulars Concerning Agnishikha
Form IV

(1) *Place of Publication*:	Sri Aurobindo Ashram Puducherry - 605002
(2) *Periodicity of its publication:*	Monthly
(3) *Printer's Name:* *Nationality :* *Address:*	Swadhin Chatterjee Indian Sri Aurobindo Ashram Press, Puducherry - 605002
(4) *Publisher's Name:* *Nationality:* *Address:*	Pradeep Narang, Indian Sri Aurobindo Society, 11, Saint Martin Street, Puducherry - 605001
(5) *Editor's Name:* *Nationality :* *Address :*	Vandana Indian Sri Aurobindo Ashram Puducherry - 605002
(6) *Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital:*	

I, Pradeep Narang, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

1st March 2023

Sd/- (Pradeep Narang)
Chairman

Sri Aurobindo Society

INDORE BRANCH — *Creating the Next Future*

विनम्र अनुरोध

'श्री अरविन्द-विश्व-निलयम्' नव-निर्माण हेतु

आदि शक्ति मां भगवती एवं परम प्रभु की असीम कृपा और आशीर्वाद से श्री अरविन्द सोसायटी पुदुचेरी शाखा इन्दौर द्वारा एअरपोर्ट के निकट सर्वे क्रमांक 126/8, छोटा बांगड़दा में अपने स्वामित्व की 13,495 वर्गफीट भूमि पर दिव्य समाज निर्माण की आध्यात्मिक गतिविधियों के संचालन हेतु एक शक्तिपीठ पूर्ण योग साधना एवं ध्यान केन्द्र श्री अरविन्द–विश्व– निलयम् के नव–निर्माण का कार्य 25 जनवरी 2021 से शुभारंभ हो चुका है।

आपको यह सूचित करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है कि उक्त वृहद् कार्य –निर्माण के प्रथम चरण में तल मंजिल, प्रथम मंजिल एवं द्वितीय मंजिल जिसमें सर्व सुविधा युक्त हॉल, श्री माँ – श्री अरविन्द के दिव्य – ग्रन्थों की लायब्रेरी, अतिथि –कक्ष, किचन, डाइनिंग हॉल तथा एक रमणीय उद्यान में श्री अरविंद के दिव्य – देहांश की प्रतिष्ठा हेतु समाधि स्थल के निर्माण का लक्ष्य है। भविष्य में इसे विस्तार देने की योजना है।

इस दिव्य निर्माण कार्य की अनुमानित लागत 2.5 करोड़ रूपये है। यह कार्य सभी के सहयोग तथा सामूहिक प्रयास से ही संभव हो सकता है। आपके द्वारा दी गई दान–राशि को आयकर अधिनियम की धारा 80(G) के अंतर्गत छूट की सुविधा है।

आपकी दान–राशि ''श्री अरविन्द सोसायटी इन्दौर'' के नाम से Cash /Cheque /DD/ NEFT/ RTGS में स्वीकार कर रसीद प्रदान की जाएगी। आपका आर्थिक सहयोग इस दिव्य कार्य को गति प्रदान करेगा।

निवेदक

चेअरपर्सन
डॉ.सुमन कोचर
sumankocher@rediffmail.com

सेक्रेटरी
मनोज कियावत
mkiyawat@gmail.com

Branch Office: 541, M. G. Road, Gorakund, OPP. ICICI Bank, Indore (M. P.) – 452 002
Phone: 0731- 2452500, Mob: 9826067685 ,9826066520
Email: sasindore@aurosociety.org, Website: www.sriaurobindosocietyindore.com
Head Office: Puducherry – 605 001, Website: www.aurosociety.org

आप QR कोड स्कैन करके भी डोनेशन कर सकते हैं।

Bank Details –
A/C Name - Sri Aurobindo Society Indore
SB A/C No.- 0325101016104
Bank Name – Canara Bank
Branch – M. G. Road Indore – 2 (M.P.)
IFSC Code - CNRB0000325

SRI AUROBINDO SOCIETY INDORE

Proposed View

Date of Publication: **1st March 2023**
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2021-23
RNI No. 18135/70